हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ४२ वाँ ग्रन्थ।

मिश्रित

महाराजा
महादजी सिन्धिया।

(म० माधवराव सिन्धिया।)

लेखक—

श्रीयुक्त सम्पूर्णानन्द बी० एस० सी०, एल० टी०

(भौतिक-विज्ञान, ज्योतिर्विनोद, महाराज छत्रसाल, भारतके देशी राष्ट्र, चेतसिंह और चीनकी राज्यक्रान्ति, आदिके रचियता)।
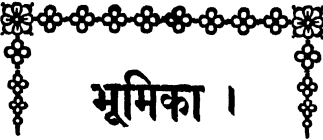
थमावृत्ति। } श्रावण १९७७ वि०। जुलाई १९२० ई०। { मू० ।||=)

जिल्दसहितका ।||=) २)

प्रकाशक
नाथूराम प्रेमी
और
छगनमल
बाकलीवाल
मालिक
हिन्दीग्रन्थरत्नाकर
कार्यालय
हीराबाग
बम्बई

प्रिन्टर मंगेशराव कुळकर्णी
कर्नाटक स्टीम प्रेस
४३४ ठाकुरद्वार बम्बई
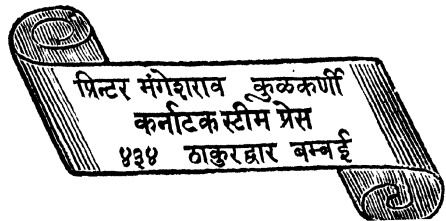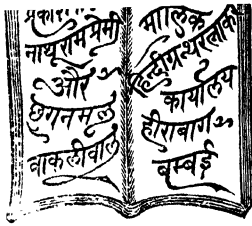
भूमिका।

माधवराव शिंदेकी जीवनी एक व्यक्ति-विशेषकी जीवनी ही नहीं है; वह भारतके आधुनिक इतिहासके एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण अङ्कका सिंहावलोकन है, तत्कालिक हिंदू, विशेषतः महाराष्ट्र, जनताके मनोवेगों और प्रयत्नोंका दिग्दर्शन है। नेता अपने अनुयायियोंसे पृथक् नहीं हो सकता। वह उनके विचारों, उनकी शक्तियों, को यथोचित मार्गोंमें प्रेरित करता है पर साथ ही उसके विचार भी उनकी आशाओं, उनकी आकांक्षाओंसे रञ्जित होते हैं। नेता और अनुगन्ताके हृदयोंमें एक दूसरेके भाव प्रतिबिम्बित होते हैं। इसी लिये माधवरावका जीवन महत्त्व-पूर्ण है। उनकी लड़ाइयों, उनकी राजनैतिक चालों, उनके वक्तव्यों, ने भारतीय इतिहास पर बहुत कुछ प्रभाव डाला है। पर हम इनका उतना आदर नहीं करते, जितना उनके हार्दिक भावों, उनके आदर्शों, उनके उद्देश्योंका।

भारतमें मुसल्मानी राज्यको स्थापित हुए नौसौ वर्षसे ऊपर हो गये, तबसे यह देश न्यूनाधिक विदेशियोंके आधिपत्यमें ही रहा है; पर हिन्दू जनता सदैव निश्चेष्ट नहीं बैठी रही है। उसने बीच बीचमें अपने अभ्युत्थानके लिये कई बार प्रयत्न किया है और देशकालके अनुकूल नेता भी उत्पन्न होते गये हैं। अपने अपने समयमें ये नेता जातीय क्षोभ या आन्दोलनके दृष्टिगम्य स्वरूप होते थे। मेरी समझमें माधवरावको भी इसी कोटिमें रखना चाहिये। परन्तु कई कारणोंसे साधारण जनता उनके नाम और महत्त्वसे परिचित नहीं है। इन कारणोंमेंसे प्रधान कारण मेरी समझमें यह है कि इनके उत्तराधिकारी उस कामको पूरा न कर सके जिसको इन्होंने आरम्भ किया। पूरा करना तो दूर रहा,

उन लोगोंने बना बनाया काम बिगाड़ दिया। इसी लिये माधवरावकी कीर्ति जनताकी दृष्टिसे छिपी रह गई; उनका यशोगान केवल इतिहासके पृष्ठोंमें होता है।

उनके जीवनका परिचय सर्वसाधारणको करानेके लिये ही यह पुस्तक लिखी गई है। यदि मेरी यह इच्छा कुछ अंशोंमें भी पूरी हो गई तो मैं अपनेको कृतकृत्य मानूँगा। इस सम्बन्धमें मैं अपने मित्र पण्डित नन्दकिशोर जोशी, बी० ए० को धन्यवाद देना चाहता हूँ। उन्होंने ही पहले पहल मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया और उन्हींके अनुरोधसे यह पुस्तक लिखी गई।

इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे विशेषतः निम्नलिखित पुस्तकोंसे सहायता मिली है।

(१) Madhava Rao Scindia by Keene (Rulers of India Series).
(२) Fall of the Moghul Empire by Keene.
(३) Lyall's British Dominion in India.
(४) Aitchison's Treaties.
(५) Memoirs of Lt. Col. James Skinner.
(६) Grant Duff's History of the Marathas.

काशी
ज्येष्ठ शु० ४, १९७५

—सम्पूर्णानन्द।

विषय-सूची ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज ।

—————:०:—————

हिन्दी संसारमें नये ढंगके उच्चश्रेणीके ग्रन्थ प्रकाशित करनेवाली सबसे प्रसिद्ध और सबसे पहली ग्रन्थमाला विक्रम संवत् १९६५ से बराबर निकल रही है। अब तक नीचे लिखे ४१ ग्रन्थ निकल चुके हैं। स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतसे दिये जाते हैं। आठ आने 'प्रवेश फी' देनेसे चाहे जो ग्राहक बन सकता है।

क्रम	ग्रन्थ	मूल्य
१–२	स्वाधीनता	२)
३	प्रतिभा (उप०)	१।)
४	फूलोंका गुच्छा (गल्पें)	॥-)
५	आँखकी किरकिरी (उप०)	१॥=)
६	चौबेका चिट्ठा	॥।)
७	मितव्ययता	॥।≡)
८	स्वदेश (निबन्ध)	॥=)
९	चरित्रगठन और मनोबल	।)
१०	आत्मोद्धार (जीवनी)	१)
११	शान्तिकुटीर	॥।=)
१२	सफलता	॥।)
१३	अन्नपूर्णाका मन्दिर (उप०)	१)
१४	स्वावलम्बन	१॥)
१५	उपवास-चिकित्सा	॥।)
१६	सूमके घर धूम (प्रहसन)	।)
१७	दुर्गादास (नाटक)	१)
१८	बंकिम-निबन्धावली	॥।=)
१९	छत्रसाल (उप०)	१॥)
२०	प्रायश्चित्त (नाटक)	।)
२१	अब्राहम लिंकन	॥=)
२२	मेवाड़-पतन (नाटक)	॥।=)
२३	शाहजहाँ ,,	॥।=)
२४	मानव-जीवन	१।=)
२५	उस पार (नाटक)	१=)
२६	ताराबाई ,,	१)
२७	देश-दर्शन	२॥)
२८	हृदयकी परख (उप०)	॥।=)
२९	नव-निधि (गल्पें)	॥।=)
३०	नूरजहाँ (नाटक)	१)
३१	आयर्लैण्डका इतिहास	१॥।=)
३२	शिक्षा (निबन्ध)	॥-)
३३	भीष्म (नाटक)	१=)
३४	कावूर (चरित)	१)
३५	चन्द्रगुप्त (नाटक)	१)
३६	सीता ,,	॥-)
३७	छाया-दर्शन	१।)
३८	राजा और प्रजा	१)
३९	गोबर-गणेश-संहिता	॥-)
४०	साम्यवाद	२॥)
४१	पुष्प-लता	१)
४२	महादजी सिन्धिया	॥।=)

प्रकीर्णक पुस्तकमाला ।

सीरीजके सिवाय हमारे यहाँसे नीचे लिखी हुई फुटकर पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं ।

पुस्तक	मूल्य
व्यापार-शिक्षा	॥-)
युवाओंको उपदेश ...	॥-)
शान्ति-वैभव	।-)
कनकरेखा (गल्पें) ...	॥।)
कोलम्बस (जीवनी) ...	॥।)
बच्चोंके सुधारनेके उपाय ...	॥)
ठोक पीटकर वैद्यराज ...	।-)
मणिभद्र (उपन्यास) ...	॥≈)
हिन्दीजैनसाहित्यका इतिहास	।=)
सन्तान-कल्पद्रुम... ...	॥।)
पिताके उपदेश	≈)
अच्छी आदतें	≈)॥
अस्तोदय और स्वावलम्बन...	१=)
देवदूत (काव्य)... ...	।=)
विधवा-कर्तव्य	॥)
भारत-रमणी (नाटक) ...	॥।=)
बूढ़ेका ब्याह (काव्य) ...	।≈)
प्राकृतिक चिकित्सा ...	।≈)
योग-चिकित्सा	=)
दुग्ध-चिकित्सा	≈)
सुगम चिकित्सा	=)
लन्दनके पत्र	≡)
ब्याहीबहू (स्त्रीशिक्षा) ...	≡)
अंजना-पवनंजय (काव्य) ...	≈)॥
श्रमण नारद	=)
सदाचारी बालक	≈)
दियातले अँधेरा	-)॥
भाग्य-चक्र	-)
विद्यार्थी जीवनका उद्देश्य ...	-)
सिंहल विजय (नाटक)	१=)
पाषाणी ,,	॥।)
कर्नल सुरेश विश्वास (जी. च.)	॥)
जीवन-निर्वाह	१)

नोट—हमारे यहाँ अन्यान्य प्रकाशकोंके भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ विक्रीके लिये मौजूद रहते हैं । एक कार्ड लिखकर बड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखिये ।

मैनेजर—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पोष्ट गिरगाँव, बम्बई ।
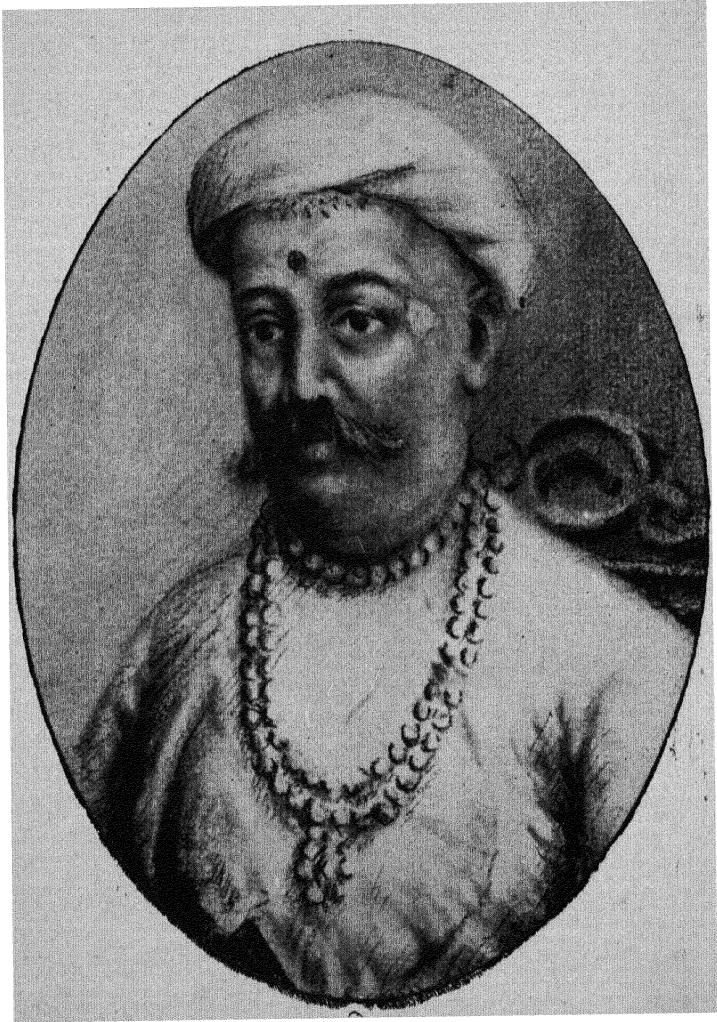
महादजी शिंदे (माधवराव सिन्धिया) ।

C. S. P.

महादजी सिन्धिया।

१—प्रस्तावना।

इस संसारमें कभी कभी ऐसे व्यक्ति जन्म लेते हैं जिनके जीवनका इतिहास उनके देशका तत्कालीन इतिहास कहा जा सकता है। यदि कोई इतिहासवेत्ता उनका वर्णन छोड़कर उनके जीवन-कालका इतिहास लिखना चाहे तो उसकी रचना नितान्त गौरवशून्य, अर्थ-हीन और असम्बद्ध प्रतीत होगी। ये लोग अच्छे हों या बुरे, पर इनमें कुछ ऐसी विलक्षण योग्यता होती है कि ये अपने समयके इतिहासका मूल सूत्र अपने ही हाथों रखते हैं। इतिहासके पृष्ठोंसे अशोक, अकबर, औरङ्गजेब, शिवाजी, नैपोलियन या वर्त्तमान कैसरके नामोंको निकालनेकी कल्पना करनेसे ही उपर्य्युक्त कथनकी सत्यता स्पष्ट हो जाती है।

ऐसे ही लोगोंमें हमारे चरित्र-नायक महादजी शिंदे या माधवराव सिंधियाकी गणना है । पानीपतकी लड़ाईके पीछे, जैसा कि आगे चलकर देख पड़ेगा, भारतके ऐतिहासिकनाट्य-मञ्चपर माधवराव एक प्रधान अभिनेता थे । उनकी मृत्युके समय, भारतका ऐसा कोई प्रदेश न था जिसमें उनका नाम ससम्भ्रम न लिया जाता हो । भारतीय राष्ट्र तो इनका लोहा मानते ही थे, विदेशियोंमें भी इनकी असाधारण प्रतिभा, नैतिक चातुर्य्य और सैनिक बलका सिक्का बैठा हुआ था । सरकारी इम्पीरियल गजेटियर (Imperial Gazetteer) के अनुसार यह 'a statesman and soldier of almost un-surpassed ability.' एक अनुत्तमप्राय योग्यताके योद्धा और राजनीतिज्ञ थे । अँगरेजोंसे शत्रुता रखनेवाले, फ्रांसीसियोंका, भी इनके प्रति यही भाव था । दिल्ली और पूनाकी ढलती गद्दियोंके यही एक मात्र सबल आश्रय थे और इन्होंने ही अँगरेजोंकी बढ़ती शक्तिको भी रोक रक्खा था । इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे व्यक्तिका जीवन हमारे लिये अनेक शिक्षाओंका भाण्डार है ।

किसीने कहा है 'The history of a country is the history of the great men who have flourished in it.' इसी बातकी पुष्टि भीष्म पितामहने अपने उस वाक्यद्वारा की है जहाँ वे स्पष्ट शब्दोंमें 'कालो वा कारणम् राज्ञः' के पक्षका तिरस्कार करके 'राजा कालस्य कारणम्' का सिद्धान्त स्थिर करते हैं ।

इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि राजा (या अन्य महापुरुष) अपने समयको जैसा चाहे बना सकता है । जो देश-काल-पात्रके बन्धन इतर मनुष्योंकी गतिके प्रतिरोधक होते हैं उनको वह अपनी असाधारण शक्ति द्वारा अपना दृढ सहायक बना लेता है । 'क्रियासिद्धिः सत्त्वे

भवति महताम्, नोपकरणे '। साधारण मनुष्य अनुकूल साधनोंकी प्रतीक्षा करता है पर महापुरुष, जो किसी कार्यविशेषके लिये ही जन्म लेते हैं, ऐसा नहीं करते। उनके पास इतना अवकाश ही नहीं होता। प्रतिकूलको अनुकूल बनानेमें ही उनकी असाधारण योग्यताका परिचय मिलता है। यह सम्भव है कि अपना लक्ष्य पहिचाननेमें वे भूल कर दें परन्तु उसे प्राप्त करनेसे उन्हें कोई रोक नहीं सकता। जब वे किसी काममें हाथ डालते हैं तो सारे विरोधी सत्त्वोंको उनकी इच्छाका अनु-गमन करना ही पड़ता है और वे अपने कार्य्यक्षेत्रसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक विषय पर अपने व्यक्तित्वकी छाप लगा जाते हैं। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, भारतके इतिहासमें माधवराव सिंधिया अपना ऐसा ही अमिट चिह्न छोड़ गये हैं।

पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि समय भी एक अत्यन्त बलवती सत्ता है। काल अपना कुछ न कुछ प्रभाव सभीपर डालता है। जिस व्यक्तिकी इच्छाएँ, आशाएँ, विवेचनाएँ अपने समयके जितनी ही अनुकूल होती हैं उसको उतनी ही सफलता प्राप्त होती है। समयके प्रवाहके नितान्त विरुद्ध जाना प्रायः कठिन होता है। इसी लिये कहा जाता है कि महापुरुष अपने समयका स्थूल रूप होता है। उसके विचारादिका ज्ञान होनेसे हमको उसके तत्कालीन देशवासियोंका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है और उसके देशकी समसामयिक अवस्था जाननेसे उसके जीवनकी बहुतसी बातें आपसे आप समझमें आ जाती हैं। योद्धा कितना ही अच्छा हो, उसका शस्त्र भी अच्छा होना चाहिये; यह आवश्यक है कि उसके प्रयत्नकी सिद्ध्यसिद्धिपर विचार करते समय हम उसके शस्त्रोंकी दशापर भी विचार कर लें।

इस लिये यह आवश्यक है कि किसीके जीवनकी घटनाओंपर विचार करनेके पहले हम यह देख लें कि वह समय कैसा था जब उसने जन्म लिया, वे लोग कौन थे जिनके बीचमें उसे काम करना पड़ा, वह देश कैसा था जिसे उसने अपना कार्य्यक्षेत्र बनाया। माधवराव सिंधियाके सम्बन्धमें यह और भी आवश्यक है। उनके महत्त्वको सब मानते हैं पर उनके मूल उद्देश्यके विषयमें घोर मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि उनका उद्देश्य यह था कि 'मराठासंघ' जो टूट रहा था फिरसे प्रबल हो जाय और महाराष्ट्रकी संयुक्त शक्ति फिरसे भारतमें हिन्दू साम्राज्य स्थापित करनेमें लगाई जाय; औरोंका कथन है कि वे पूर्णतया स्वार्थी थे और केवल अपने स्वतंत्रराज्यकी वृद्धिके लिये प्रयत्न कर रहे थे। ऐसी अवस्थामें जबतक कि हम भारतके तत्कालीन इतिहासका संक्षिप्त सिंहावलोकन न कर लें, हम इस मत-वैषम्यके सामने कुछ निर्णय नहीं कर सकते।

मराठा जातिके अभ्युत्थानका विस्तृत वर्णन करना अनावश्यक है। मुगल-साम्राज्य लगभग डेढ़ सौ वर्षतक सुखमय जीवन व्यतीत कर चुका था और अब अपने पूर्वभावी मुसल्मान साम्राज्योंकी भाँति विनाशोन्मुख जा रहा था। बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ उसकी गद्दीको सुशोभित कर चुके थे। देखनेमें उसका वैभव अपार था और उसकी वृद्धिकी धारा अविच्छिन्न थी। नित्य नये नये प्रान्त-साम्राज्यमें सम्मिलित होते जाते थे। विदेशी इस महत्वको देखकर दङ्ग थे। Great Mogul 'महा मुगल' का नाम यूरपमें भी आदरके साथ लिया जाता था। पर यह सब दशा बहुत दिनोंतक चलनेवाली न थी। शाहजहाँके समयमें मुगल-राज्यका प्रताप मध्याह्नके सूर्य्यके सदृश प्रचण्ड परन्तु शीघ्र ही क्षीण होनेवाला था। जिस

पारस्परिक द्वेष, विषयपरता और कर्तव्यविमुखताने इसके पूर्व पठानोंको चौपट किया था वह मुगलोंमें भी आगई थी। शाहजहाँके उत्तराधिकारी सम्राट् औरङ्गजेब विषय-लोलुप न थे और जिस बातको अपना कर्तव्य समझते थे उसका पालन भी दृढ़तासे करते थे पर उनमें धर्म्मान्धताका महा दूषण था, इस कारण वे अपने कर्तव्यको पहिचाननेमें प्राय: सदैव ही भूल करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि उनका और साम्राज्यका बल व्यर्थके कामोंमें लगाया जाता था, और अन्तमें परिताप ही हाथ आता था।

इसका सबसे अच्छा उदाहरण वह व्यवहार है जो सम्राट्ने हिन्दुओंके साथ किया। अकबरके समयसे धीरे धीरे विजित और विजेताका वैषम्य मिट रहा था और एक निष्पक्ष शासनकी छत्रच्छायामें रहकर हिन्दू मुसलमान एकराष्ट्र बन रहे थे।

कुछ लोग कहते हैं कि भारत कभी एक देश, एक राष्ट्र, न था; परन्तु इतिहासवेत्ताओंका कथन है कि प्राचीनकालसे ही भारतमें राष्ट्रभाव चला आता है और बीचबीचमें दब जानेपर भी अवसर पाकर फिर जाग उठता है।

औरङ्गजेबके पहलेका समय इस भावके जागरणका था। उत्तर-भारतमें अपना अधिकार जमाकर मुगल लोग धीरे धीरे दक्षिणकी ओर बढ़ रहे थे और ऐसा प्रतीत होता था कि कुछ कालमें सारा देश एक ही शासनका वशवर्त्ती हो जायगा, पर भावी कुछ और थी। औरङ्गजेबने यह न होने दिया। इसमें सन्देह नहीं कि बीजापुरका राज्य मुगल-शासनमें आ गया, पर साथ ही राजपूताने और बुन्देलखण्डका बहुतसा भाग स्वतंत्र हो गया और शेषपर सम्राट्का अधिकार अत्यन्त कम रह गया।

इसी समय शक संवत् १५४९ (वि० सं० १६८४) में महाराजा शिवाजीका जन्म हुआ। इनके जीवनकी कथा प्रसिद्ध ही है। उन्नीस वर्षके वयसे ही इन्होंने मुसल्मानोंके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किया और अनेक कष्टोंको झेलकर महाराष्ट्रमें स्वराज्य स्थापित किया।

सम्वत् १७६४ में औरङ्गजेबका देहान्त होते ही मुगल राज्यका सूर्य्य सदाके लिये डूब गया। नामके लिये कई सम्राट् गद्दी पर बैठे पर राज्य नित्य सङ्कीर्ण होता जाता था; योग्यताका अभाव और विषयपरताकी वृद्धि साथ साथ हो रही थी और सम्राट् अपने मंत्रियोंके हाथका उपयोगी खिलौना होता था। अवध, बङ्गाल और दक्षिणके प्रान्तीय क्षत्रियोंने अपना अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था और वायव्य कोण पर अफगानोंने बुरी गत बना रक्खी थी।

इधर मराठोंकी वृद्धि होती जाती थी। शिवाजीके लड़के शम्भाजी मुगलोंके हाथमें पड़कर मारे गये। उनके पुत्र शाहूजी गद्दीपर बैठे। यह बहुत दिनोंतक मुगलोंके यहाँ बन्दी रह चुके थे। इस लिये राज्यप्रबन्धकी विशेष योग्यतासे वञ्चित थे। उन दिनों महाराष्ट्रकी राज्यप्रणाली इस प्रकार थी। राज्यके मुख्य कार्य्यकर्ताको प्रतिनिधि कहते थे। इनके अतिरिक्त एक व्यवस्थापक सभा थी जिसको 'अष्टप्रधान' कहते थे। इसमें आठ सदस्य या प्रधान थे। इनके सभापतिको 'पेशवा' कहते थे।

शाहूके समयमें बालाजी विश्वनाथ पेशवा थे। ये असाधारण प्रतिभाशील और उद्योगी पुरुष थे। धीरे धीरे इनका अधिकार इतना बढ़ गया था कि 'प्रतिनिधि' की भी इनके आगे न चलती थी। इनके पुत्र बाजीराव इनसे भी योग्य थे। उन्होंने धीरे धीरे सारा अधिकार अपने हाथमें कर लिया; यहाँ तक कि प्रतिनिधि तो क्या

महाराज भी इनकी मुट्ठीमें थे। इनकी यह महत्त्वाकांक्षा थी कि छत्रपति शिवाजीने जिस कार्य्यकी नींव डाली थी वह सम्पूर्ण किया जाय, अर्थात् भारतमें फिरसे हिन्दू-साम्राज्य स्थापित किया जाय। इसी उद्देश्यसे इन्होंने मराठी सेनाको उन्नति देना आरम्भ किया। इस सेनाके दो प्रधान विभाग थे। एकमें तो 'बारगीर' अर्थात् सिपाही थे। ये नियत वेतन पाते थे और पेशवाके अधीन थे। दूसरा विभाग शिलेदारोंका था। ये शिलेदार लोग एक प्रकारके स्वतंत्र सेनानायक होते थे। ये आप अपनी सेनाएँ सङ्गठित करते थे। इनको कोई नियत वेतन नहीं मिलता था, पर जो कुछ लूटमें मिलता वह इनको और इनके अनुयायियोंको मिलता था। इसके अतिरिक्त, इनको जागीरें भी मिलती थीं। इन शिलेदारोंसे मराठा राज्यकी बड़ी उन्नति हुई, पर अन्तमें यही एक प्रकारसे उसके ह्रासके भी साधन हुए। जिन दूर दूरके प्रान्तोंपर मराठे धावा मारते थे उन सब पर जमकर शासन करना उनके लिये असम्भव था। इस लिये वे ऐसी चेष्टा ही न करते थे, प्रत्युत दूरस्थ प्रान्तोंके नरेशों और शासकोंसे चौथ (या उनके वार्षिक आयका चतुर्थांश) लेकर उनके प्रदेशोंको छोड़ दिया करते थे। इससे उनका आधिपत्य भी बढ़ता जाता था और शासनप्रबन्धका झगड़ा भी न करना पड़ता था।

सं० १७८४ में पेशवाने रानोजी शिंदे, मल्हारिराव होल्कर आर ऊदाजी पँवार नामक शिलेदारोंको मालवा प्रान्त विजय करनेके लिये भेजा। उस समय राजा गिरिधर राय नामक एक व्यक्ति यहाँका सूबेदार था। कुछ कालमें सारा मालवा मराठोंके हाथमें आ गया और इन शिलेदारोंको इसके टुकड़े जागीरमें मिले। इन्हीं

जागीरोंसे ग्वालियर, इन्दौर और धारके राज्योंकी उत्पत्ति हुई और ये ही तीनों शिलेदार शिंदे, होलकर और पँवार वंशोंके मूलपुरुष थे। क्रमशः ये जागीरदार स्वतंत्र नरेश हो गये। ये अपने अपने राज्यकी वृद्धिके लिये स्वतंत्र युद्ध और सन्धि करते थे पर अपनेको पेशवाके अधीन मानते थे। यही प्रसिद्ध 'मराठासंघ' (Maratha confederacy) की उत्पत्ति है।

अब हमको फिर दिल्लीकी ओर ध्यान देना होगा। अहमदशाह सम्राट् थे। इनके गद्दीपर बैठनेके समय यह आशा की गई थी कि राज्यका प्रबन्ध कुछ उन्नतिके लक्षण दिखलाएगा, पर थोड़े ही दिनोंमें यह आशा जाती रही। राज्यका सूत्र जावेदखाँ नामक एक हिजड़े और अदहम बाई नामक एक वेश्याके हाथमें चला गया। इस बाईका उपनाम कुदसिया बेगम था। इधर राज्यमें दो प्रबल दल खड़े हो गये थे। एकके नेता फारसके सफदरजङ्ग और दूसरेके तुर्की गाजिउद्दीन थे। दोनोंमें घोर वैर था और इस वैरने राज्यकी रही सही शक्तिको और क्षीण कर डाला। अन्तमें तुर्की दलकी जीत हुई। उन्होंने अहमदशाहको कैद कर दिया और जहाँदारके एक लड़केको 'द्वितीय आलमगीर' की उपाधि और सम्राट्की पदवी मिली।

इसी समय (संवत् १८१४) अहमदशाह अब्दालीने भारतपर आक्रमण किया। गाजिउद्दीनने सामना करना चाहा, पर किसीने उसका साथ न दिया। अन्तमें सन्धि हुई। अहमदशाह बहुतसा धन लूट कर ले गया और नजीबखाँ नामक एक पठान सर्दारको 'अमीरुलउमरा' की उपाधि देकर उसे सम्राट्का रक्षक नियत कर गया। परन्तु उसके जाते ही गाजीने फिर सिर उठाया। उसने नजीबखाँको निकाल बाहर किया और इस कामके लिये उसने

मराठोंसे सहायता ली। नजीबको निकालकर उसने सम्राट्को दुःख देना आरम्भ किया और अन्तमें १८१६ में बेचारेको मार ही डाला। युवराज अली गौहरने अवधके नव्वाबवजीरके यहाँ भाग कर जान बचाई।

इन बातोंका समाचार पाते ही अहमदशाह अब्दाली फिर भारतकी ओर लौटा। उसकी सहायताके लिये अवधके नव्वाब शुजाउद्दौला और नजीबखाँ एकत्र हुए। इधर इनके प्रतिपक्षमें गाजिउद्दीन और मराठोंकी सेना थी, पर गाजी शीघ्र ही मराठोंको छोड़कर चल दिया और कुछ दिन इधर उधर मारामारा फिर कर बड़ी दुरवस्थामें पंजाबमें १८५७ में मरा।

इस अवसर पर जो घटना हुई वह इतने महत्त्वकी है कि उसका वर्णन एक पृथक् अध्यायमें करना आवश्यक है। जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे भारतकी तत्कालीन राजनैतिक अवस्था बहुत कुछ झलक जाती है। हमारे नायक, माधवराव, उस समय भी सार्वजनिक कामोंमें भाग लेते थे, पर इन बातोंका विस्तृत उल्लेख अगले अध्यायमें होगा।

२—पानीपत ।
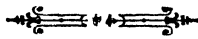
हम ऊपर लिख चुके हैं कि गाजी मराठोंको छोड़कर भाग गया। अब अहमदशाहका सामना करनेका भार अकेले मराठोंपर पड़ा । उस समय (सं० १८१६) मराठोंके अध्यक्ष रानोजी शिंदेके दो लड़के, दत्ताजी और माधोजी, थे । पीछेसे मल्हारिराव होल्कर भी इनको सहायता देने आये, पर इन शिलेदारोंमें इतना सामर्थ्य न था कि अब्दाली सेनाका सामना कर सकते। अन्तमें इन्हें पञ्जाब छोड़ना पड़ा।

पर बात यहीं समाप्त न हुई । अहमदशाह अब्दाली समझते थे कि मराठे इतनेसे शांत न होंगे । उन दिनों बाजीरावके पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा थे । ये अपने पितासे भी अधिक उत्साही और महदाकांक्षी थे । ये सदैव भारतमें मराठा साम्राज्य स्थापित करनेकी धुनमें रहते थे । दक्षिण भारतमें तो मराठोंकी धाक बैठ चुकी ही थी—सबसे बड़े मुगल प्रान्ताधीश, निजाम, पेशवाको कर देते थे—; अब उन्हें उत्तर भारतमें अपना स्थान दृढ करना था ।

अवसर बुरा नहीं था। उस प्रान्तकी अवस्था कीनके * निम्न-लिखित शब्दोंसे स्पष्ट प्रतीत होती है:—

---

* मिस्टर कीनने मुसलमानी राज्योंके उत्थान और पतनका बड़ा अच्छा चित्र खींचा है । उसका मुख्यांश परिशिष्टमें उद्धृत किया गया है ।

"The heart of the exhausted Empire had now almost ceased to beat. Never in modern times has a civilised country fallen into such a condition. The ruin of the Government had been gradual and soon it became final. There was not only no class of society left to make head against foreign invasion but there was none left to heal the wounds of the body politic when foreign invaders should depart. It may seem that we are witnessing a combat of kites and crows; but at least there is something tragic in the aspect of so vast and famous a land intended as a helpless prize for their contentions."

"क्षीण साम्राज्यका हृदय अब प्रायः निःस्पन्द हो गया था। वर्त्तमान कालमें किसी सभ्य देशकी ऐसी अधोगति नहीं हुई है। वह धीरे धीरे नष्ट हो रहा था; शीघ्र ही उसका पूर्णनाश हो गया। न तो समाजमें कोई ऐसा अङ्ग बच रहा था जो विदेशियोंके आक्रमणको रोकता, न कोई विदेशियोंके चले जानेपर देशकी दशा सुधारनेवाला बच गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि हम चील-कौवोंकी लड़ाई देख रहे हैं; पर ऐसे बड़े और प्रसिद्ध देशको उनके सामने उपहार-रूपसे ऐसी निःसहाय और निश्चेष्ट दशामें पड़ा देखकर दुःख होता है।"

कीनके कथनका तात्पर्य्य यह है कि मुगल-साम्राज्य केवल नाम-मात्रको रह गया था और उसके अधःपतनने सारे उत्तरीय भारतको बड़ी दुरवस्थामें डाल दिया था। लोगोंमेंसे जातीय जीवनका भाव जाता रहा था। अफगान, मराठा आदि प्रबल जातियाँ आधिपत्यके लिये लड़ रही थीं, पर स्वयं मुगल-शासन और उसकी प्रजामें न तो

कोई उत्साह था न सामर्थ्य था। "कोउ नृप होइ हमैंका हानी, चेरि छौंड़ि न कहाउब रानी" का भाव उनमें व्यापक हो रहा था।

इसी अवसरसे पेशवाने लाभ उठाना चाहा। उनके पास सेनाकी कमी न थी। यह सेना पहलेकी भाँति अनियंत्रित भी न थी। अब मराठोंको पैदल, सवार, तोपखाना सबका ही बल था। पेशवाके शिलेदार, शिंदे, होल्कर, गायकबाड़, आदिके पास भी अच्छी सेनाएँ थीं। मराठोंकी प्रतिष्ठा भी देशमें अच्छी थी। इन्हीं सब बातोंको देखकर पेशवाने उत्तर भारतकी ओर सेना भेजना निश्चित किया।

इस सेनाके प्रधानाध्यक्ष पेशवाके भाई सदाशिवराव भाऊ थे। महाराष्ट्रमें इनका बड़ा नाम था। इनके साथ पेशवाके पुत्र विश्वास-राव थे। ये भी प्रसिद्ध योद्धा थे। इनके साथ दक्षिणसे बीस सहस्र सवार गये थे। इसके अतिरिक्त इब्राहीमखाँ गर्दी नाम एक सेनानीके अधीन दस सहस्र पैदल और तोपखानेका एक रिसाला भी इनके साथ था। यह गर्दी बुसी नामक फ्रांसीसी सेनाध्यक्षके साथ रह चुका था। इसने वहीं कवायद और योरोपीय लड़ाईका रहस्य सीखा था और इसके सिपाही भी उसी प्रकारकी शिक्षा पाये हुए थे। यह फ्रेञ्च सेनाके garde (गार्ड—गारद, रक्षकसेना) में काम कर चुका था; इसी लिये गर्दी कहलाता था।

यह तो पेशवाकी मुख्य सेना थी। इसके अतिरिक्त शिलेदारोंकी सेनाएँ थीं। गुजरातसे गायकवाड़, मालवेसे शिन्दे, होल्कर और पँवार और नागपूरसे भोंसलेकी कुमक आई। बुन्देलखण्डसे गोविन्दपंत आये। कई राजपूत रईसोंने सहायक सेनाएँ भेजीं और भरतपुरके प्रसिद्ध राजा सूरजमल बीस सहस्र जाट लेकर आये। यहाँ इतना कह देना

आवश्यक है कि शिंदे दलके नेता दत्तोजीके पुत्र जनकोजी थे और माधवराव उनके साथ गये थे।

मराठी सेना बड़ी धूमधामसे बढ़ रही थी। दिल्लीतक उसका किसीने विरोध न किया। दिल्लीके किलेकी रक्षाका भी कोई अच्छा प्रबन्ध न था, इस लिए वह सरलतासे ही मराठोंके हाथमें आ गया। इस अवसर पर भाऊने दीवान खासकी छतमें जो चाँदी जड़ी थी, उसे उखाड़ कर गला डाला। उससे लगभग सत्तरह लाख रुपये मिले।

इधर दुर्रानी सेनाका अनूपशहरके पास पड़ाव था। अहमदशाह हर प्रकारके प्रबन्धमें लगा था। नजीबखाँकी सम्मति थी कि अवधके नव्वाब भी मिला लिये जायँ। अहमदशाहको भी यह बात अच्छी लगी। नजीबखाँ इस उद्देश्यसे लखनऊ भेजा गया। उधर भाऊ भी नव्वाबको मिलानेके प्रयत्नमें थे। उनको इस कारण कुछ आशा हो गई थी कि नव्वाब शिया थे और अहमदशाह इत्यादि सुन्नी। उन्होंने नव्वाबको हर प्रकारका प्रलोभन दिया, पर अन्तमें नजीबखाँकी ही जीत रही। उसने नव्वाबको सुझाया कि यदि इस समय मराठोंकी जीत हो गई तो अवधका राज्य भी एक दिन उनके हाथमें चला जायगा। इन सब बातोंपर विचार करके नव्वाब भी दुर्रानी सेनामें आ मिला और संयुक्त सेना अनूपशहरसे दिल्लीकी ओर बढ़ी।

मुगल-सेनाके सङ्गठनके साथ साथ मराठी सेनामें फूट बढ़ रही थी। मल्हारिराव होल्कर और सूरजमल जाटकी सम्मति यह थी कि अब भी उस नीतिका अवलम्बन किया जाय जिसके द्वारा शिवाजीने मुगल-सेनाओंका विध्वंस किया था, भरतपुर, ग्वालियर आदि कुछ सुरक्षित स्थानोंमें कुछ सेना छोड़ दी जाय। शेष सेना टुकड़ोंमें विभक्त कर

दी जाय। ये टुकड़े चारों ओर फैलकर मुसल्मानी सेनाको तङ्ग करें, जहाँ उसका पड़ाव हो, शीघ्र छापा मार कर हट जायँ, रसद लूट लें, पशुओंको भगा दें। मुसल्मानी सेना इन छोटी छोटी टुकड़ियोंकी बहुत कम हानि कर सकेगी। अन्तमें जब वह पूर्णतया थक जाय तब मिल कर युद्ध किया जाय। उस समय मुसल्मानोंको परास्त करना अत्यन्त सहज होगा।

यह युद्धप्रणाली मराठोंको अभ्यस्त थी। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इसका अवलम्बन किया जाता तो उनका कल्याण होता; पर भाऊको यह सम्मति पसन्द न आई। इतना ही नहीं, उन्होंने सूरजमल और होल्करका यह कहकर अपमान किया कि बकरियोंके चरानेवालोंकी युद्धमें सम्मति नहीं ली जाती। परिणाम यह हुआ कि सूरजमल तो कुछ कालमें भरतपुर लौट गये और होल्करका भी चित्त ऐसा खिन्न हो गया कि वे युद्धके समय अपनी सेना लेकर दाक्षिण लौट आये।

अनूपशहरसे चलकर मुसल्मानी सेनाने शाहदरामें पड़ाव डाला, परन्तु यमुनामें बाढ़ आनेके कारण लड़ाई न हो सकी। हाँ, नदीके इस पार कुञ्जपुरा नामक स्थान—जहाँ दुर्रानी सेनाका एक अंश था—भाऊके हाथ लगा और उसके रक्षक सब पठान कैद कर लिये गये। आश्विन मास तक यों ही दोनों सेनाएँ पड़ी रहीं पर दशहरेके बाद दुर्रानी-सेनाने अपना पड़ाव तोड़ा और वह बागपत नामक स्थानपर यमुनाके पार उतरी। मराठोंके लिये यह बड़े दुर्भाग्यकी बात हुई। उन्होंने अफगानोंको पार आने देनेमें बड़ी भूल की। अब्दाली सेनाकी पीठकी ओर गङ्गा यमुनाके पासकी उर्वरा भूमि थी जहाँसे उसे

हर प्रकारकी सहायता मिल सकती थी। मराठोंकी पीठकी ओर पंजाबके ऊजड़ मैदान थे जहाँ कुछ था ही नहीं। इससे भी बुरी बात यह हुई कि अब्दाली सेना मराठों और उनके देश महाराष्ट्रके बीचमें आ गई।

परन्तु अब भी कोई घबरानेकी बात न थी। मराठोंकी सेनामें लगभग दो लाख सिपाही थे। इनमेंसे अधिकांश तो व्यर्थ ही थे पर लगभग सत्तर हजार कामके मनुष्य थे। इनके पास दो सौ तोपें भी थीं। अब्दाली सेनामें लगभग चौरानवे सहस्र सिपाही थे, इनके तोपोंकी संख्या अस्सी थी।

यमुना पार पहली लड़ाई सम्बल्का नामक स्थानमें हुई। इसमें बहुतसे दुर्रानी मारे गये, पर मराठोंको पीछे हटना पड़ा और उन्होंने पानीपतमें पड़ाव डाला। उनसे लगभग दो कोसपर शाहने पड़ाव डाला।

मराठोंका कष्ट धीरे धीरे बढ़ने लगा। उनको रसदका दुःख होने लगा। उनके आसपासके ऊजड़ प्रदेशसे कुछ मिलता न था। कई बार उनके और अब्दाली सेनाके सवारोंमें मुठभेड़ हुई। कभी एक और कभी दूसरे पक्षकी जीत होती पर प्रायः मराठोंकी क्षति ही होती थी। अब भाऊको सूरजमल और होल्करकी सम्मति ठीक प्रतीत होने लगी, पर उसका समय चला गया था। अहमदशाह भी बड़ा योग्य सेनानी था। वह समझता था कि इस प्रकार मराठे क्रमशः दुर्बल होते जाते हैं और अन्तमें उनकी हार होगी।

भाऊ भी इस दुरवस्थासे घबरा गये। उन्होंने नव्वाब वजीरके पास संधिका संदेश भेजा। नव्वाब और अहमदशाह संधि करने पर

सहमत हुए पर नजीबखाँने विरोध किया। उसने कहा कि थोड़े दिन दृढ़ रहनेसे मराठोंका बल पूर्णतया तोड़ा जा सकता है। अन्तमें उसकी ही बात रही।

६ जनवरी सन् १७६१ (वि०सं० १८१८) को मराठा छावनी-में दर्बार हुआ। उसमें यह निश्चित हुआ कि भूखसे प्राण देनेसे लड़कर मर जाना ही श्रेष्ठ है। सब लोगोंने इस बातका बीड़ा उठाया कि कल या तो शत्रुको पराजित करेंगे या मर जायँगे। उसी समय भाऊने काशीराज पण्डितके पास (जो नव्वाब वजीरके प्रधान राजदूत थे) एक पत्र भेजा। उसका सारांश यह है:—"अब प्याला भर गया है और उसमें एक बूँदका भी स्थान नहीं है। यदि कुछ हो सकता है तो करो, यदि नहीं, तो मुझे शीघ्र उत्तर दो, क्यों कि फिर कुछ कहने या लिखनेका समय न रहेगा।" यह पत्र नव्वाब-वजीरके पास तीन बजे रातको पहुँचा और जब तक कुछ निश्चय हो सके लड़ाई छिड़ गई।

युद्धका विस्तृत वर्णन करना अनावश्यक है। दो पहर तक मराठोंकी जीत होती रही। मुसल्मानी सेनाका दहिना भाग टूट गया और मध्य भाग भी परास्त हो गया था। इसी समय अहमद-शाहने कुछ ताजे सिपाहियोंको, जो अभी तक चुपचाप, अलग खड़े थे, युद्धक्षेत्रमें भेजा। इनकी संख्या लगभग १५,००० थी। इनके आनेने युद्धका रूप बदल दिया। दो घण्टे तक भीषण संग्राम हुआ, पर ३ बजते बजते मराठोंके पाँव उखड़ गये। विश्वासराव मारे गये। इसने मराठोंको और भी हताश कर दिया। जो लोग भाग सके, भाग निकले। ४०,००० मराठे कैद करके मार डाले गये।

शाहकी पूर्ण जीत हुई। नव्वाब वजीर अवध लौट गये। नजीबखाँ-को नजीबुद्दौलाकी उपाधि मिली। अहमदशाह भी दिल्ली तक आये और जो कुछ धन मिल सका लेकर घर लौट गये।

मराठोंकी जो कुछ हानि हुई उसकी पूर्ति वे कभी न कर सके। भाऊ और विश्वासराव मारे गये। इब्राहीम गर्दी कैद हुआ और कैदमें ही मरा। बड़े शिलेदारोंमेंसे यशवन्तराव पँवार और जनकोजी शिंदे मारे गये। गायकवाड़ और मल्हारिराव होल्कर पहले ही चले गये थे। महाराष्ट्रमें ऐसा कदाचित् ही कोई प्रसिद्ध वंश होगा जिसका कोई पुरुष इस युद्धमें न मरा हो। सारे देशमें सूतक फैल गया। इस घटनाकी सूचना जिन शब्दोंमें पेशवाके पास भेजी गई वे ऐसे सार-गर्भित हैं कि उनका उद्धृत करना परमावश्यक है—"दो मोती गल गये; सत्ताईस सुनहरे मुहर खो गये। चाँदी और ताँबेका कोई परिमाण नहीं कहा जा सकता।" (भाऊ और विश्वासराव दोनों मोती थे, सत्ताईस बड़े सर्दार मुहर थे और साधारण सर्दार और सिपाही चाँदी और ताँबा थे।)

इस लड़ाईने कुछ दिनोंके लिये उत्तरी भारतसे मराठोंको फेर दिया और बंगालको भी उनके हाथोंसे बचा दिया। प्रातःकालके दीपकके समान मुसल्मानी साम्राज्यका टिमटिमाता दीपक भी एक बार फिर चमक उठा।

ऊपर हमने महादजी (माधवराव) शिंदेका वृत्तान्त नहीं दिया है। वह कहानी अत्यन्त रोचक है और तृतीय अध्यायमें दी जायगी। यहाँ इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि किसी प्रकार उनके प्राण बच गये।

३—माधवराव शिंदे ।

ऊपरके दोनों अध्यायोंसे उस समयकी राजनैतिक परिस्थितिका पता स्पष्टतया लग जाता है। उत्तरीय भारत निर्जीव था, उसे अनेक प्रबल शक्तियोंने अपना मृगयाक्षेत्र बना रक्खा था। दक्षिणीय भारत सशक्त था, पर पानीपतके युद्धने उसका बल भी तोड़ दिया था। यहाँपर हम उस व्यक्तिका कुछ परिचय कराना चाहते हैं जिसने इस परिस्थितिके परिवर्तनमें आगे चल कर प्रधान स्थान ग्रहण किया।

शिंदे-वंश महाराष्ट्रके प्रतिष्ठित क्षत्रिय वंशोंमेंसे था। वस्तुतः महाराष्ट्रमें क्षत्रिय-वंश कम हैं, पर यह उन थोड़ेसे गिने गिनाये कुलोंमें माना जाता था। इसका आदिस्थान सतारासे कुछ दूर पर था, परन्तु धीरे धीरे इसकी आर्थिक दशा बिगड़ती गई। यहाँ तक कि रानोजीके (जिनका कथन पहले हो चुका है) पिता एक गाँवकी पटेली करने पर विवश हुए। पटेल गाँवका मुखिया होता है। उसे गाँवकी साधारण देखरेख रखनी पड़ती है और वह प्रजा और सर्कारका एक प्रकारसे मध्यस्थ होता है। यह सब होता है, पर प्रतिष्ठाके अनुरूप कुछ अधिक वेतन नहीं मिलता।

अस्तु। रानोजीने पेशवा बाळाजी विश्वनाथके पगह या खासगी शरीर-रक्षक पल्टनमें नौकरी की। उनका यह नियत काम था

कि जब पेशवा महाराजासे भेंट करने जायँ तो उनके जूतोंकी रक्षा करें और फिर बाहर निकलने पर उनको पहना दें। एक बार पेशवा-को महाराजसे बात करते बहुत देर हो गई। रानोजीको नींद लग गई, पर नींदमें भी उन्होंने जूतोंको दोनों हाथोंसे पकड़ कर छातीसे लगा रक्खा था। बाहर निकलनेपर पेशवाने उन्हें इसी प्रकार सोता पाया, पर अपने जूतोंकी इस अवस्थामें भी रक्षा होते देख कर उनको बड़ा हर्ष हुआ।

उस दिनसे रानोजीके भाग्यने पलटा खाया। पेशवाकी कृपादृष्टिसे उनकी दिनों दिन पदवृद्धि होने लगी। सेनामें भी वह साधारण सिपा-हीसे सेना-नायक हो गये और दूर दूरकी लड़ाइयों पर भेजे जाने लगे। योग्य पुरुष तो थे ही, जो काम इनके हाथमें सौंपा जाता था उसको बड़ी उत्तमतासे करते थे। इसीसे द्वितीय पेशवा, बाजीराव भी इनसे प्रसन्न थे। तृतीय पेशवा, बालाजी बाजीराव, की भी इनपर कृपादृष्टि थी। हम ऊपर लिख चुके हैं कि पेशवाने मालवा विजय करनेके लिये एक सेना अपने दो प्रधान शिलेदारों, रानोजी शिंदे और मल्हारिजी होल्कर, के साथ भेजी थी। जब प्रान्त जीत लिया गया तो कुछ दिनोंके पीछे पेशवाने उसे जागीरोंमें बाँट दिया। मध्य और दक्षिणका कुछ भाग तो पँवारोंको मिला। यह आज धार और युगल देवास राज्योंमें विभक्त है। दक्षिणीय मालवा मल्हारिराव होल्करको मिला। इन्होंने महेश्वरको अपनी राजधानी बनाया; पीछेसे अहल्याबाईके समयमें इन्दौर राजधानी हो गया। उत्तरीय मालवाकी जागीर रानोजीको मिली। इन्होंने उज्जैनको राजधानी बनाया—ग्वालियर नगर बहुत पीछे राजधानी बना।

रानोजीके पाँच पुत्र थे। इनमेंसे तीन—जयापा, दत्ताजी और जोतिबा तो न्याय्य सन्तान थे; शेष दो तुकाजी और माधाजी अनौरस थे। औरस लड़कोंमें दत्तोजी योग्य व्यक्ति थे, पर वे पानीपतके पहले ही मर चुके थे। घरमें और कोई बड़ा न था इस लिये जयापाका लड़का जनकोजी वंशका नेता और जागीरका स्वामी हुआ। पानीपतमें वह भी मारा गया। अब कुछ लोगोंकी यह सम्मति हुई कि तुकाजीके शिशु-पुत्र केदारजीको जागीर दी जाय और माधाजी इसके अभिभावक नियत किये जायँ, पर पेशवाने यह बात स्वीकार न की। उन्होंने माधाजीको ही जागीर दे दी। यही माधाजी या महादर्जी हमारे चरित्रनायक माधवराव हैं।

उस समय तृतीय पेशवा बालाजी बाजीरावका देहान्त हो चुका था। पानीपतके दुःखसमाचारने उनको अधिक जीने न दिया। उनके पीछे उनके छोटे लड़के, माधवराव, पेशवा हुए। यह माधाजीके पक्षपाती थे, पर इनके काका रघुनाथराव (या राघोबा) केदारजीको जागीर दिलाना चाहते थे। अपनी बात न मानी जानेके कारण वे पेशवासे रुष्ट भी हो गये।

माधाजीके पानीपतसे बचनेकी कहानी भी बड़ी रोचक है। जब जीतकी कोई आशा न रही, तो माधाजीने दक्षिणकी ओर मुँह मोड़ा। ये एक अच्छी दक्षिणी घोड़ीपर सवार थे। इनके पीछे एक भीमकाय अफगान आ रहा था। उसका घोड़ा इतना द्रुतगामी न था, पर वह बहुत दूरतक पीछा करता चला गया। एक जगह एक खड्डा पड़ा। माधाजीकी घोड़ीने उसे पार करना चाहा पर किसी कारणसे वह ऐसा न कर सकी और गिर गई। जबतक वह फिर खड़ी हो सके, पूर्वोक्त अफगान भी आ पहुँचा। माधाजी उसके साथ लड़कर जीत न

सके। उसने इनके घुटनेपर ऐसा प्रहार किया कि ये गिर गये और जन्मभरके लिये किञ्चित् लँगड़े हो गये। फिर उसने इनका वस्त्रालङ्कार आदि उतार लिया और वह इनकी घोड़ीपर सवार होकर चल दिया।

ये बहुत देर तक योंही पड़े रहे और सम्भव था कि योंही इनके प्राण निकल जाते, पर सौभाग्यवश उधरसे एक मुसल्मान भिश्ती जा रहा था। उसके पास एक बैल था जिस पर उसकी पानी भरनेकी मशक थी। उसको इनकी दशा पर दया आई। उसने इन्हें अपने बैल पर डाल लिया और एक सुरक्षित स्थानमें ले गया जहाँसे कुछ अच्छे होने पर माधाजी घर चले आये। ये स्वभावतः बड़े ही कृतज्ञ पुरुष थे। उस भिश्ती, रानाखाँ, से इन्होंने आजन्म प्रेमभाव रक्खा और उसे सदा 'भाई' कह कर पुकारा। इनकी कृपासे वह बड़ा सम्पन्न पुरुष हो गया और सेनामें एक प्रधान नायक हुआ।

माधवरावका जन्मकाल ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। अनौरस होनेके कारण उसके विषयमें कोई प्रामाणिक लेख नहीं मिलता। परन्तु, जहाँ तक पता लगता है, पानीपतके समय ये लगभग तीस वर्षके थे, इस लिये इनका जन्म सम्भवतः संवत् १७८८ के लगभग हुआ होगा।

तीसवर्षकी अवस्थामें जागीर पाकर माधाजीने क्या क्या किया यह अगले अध्यायोंसे ज्ञात होगा, पर यहाँ पर उनके सामने जो काम था उसका दिग्दर्शन करना उपयोगी प्रतीत होता है। सबसे पहले तो उन्हें अपने घरमें अपना ही स्थान सुदृढ़ करना था। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं वे रानोजीके न्याय्यपत्र न थे. इस कारण

बहुतसे लोग उनके विरोधी थे। स्वयं पेशवाके काका उनके विपक्षी दलमें थे और उनके भतीजेको जागीर दिलवाना चाहते थे। ऐसी अवस्थामें उन्हें अपनी रक्षा करनी थी। यह कोई सहज बात न थी। यशवन्तराव पँवारके मरने पर कई मराठा सर्दारोंने ही उनकी जागीर लूट ली थी। शिंदेके बराबरीके कई मराठा सर्दार ऐसे थे जो अवसर पाकर शिंदे-जागीर पर हाथ मारनेसे कभी न चूकते, विशेष कर जब कि वे यह जानते थे कि माधाजीके अनुयायियोंमेंसे ही कई सर्दार उनके जन्मके कारण उनसे असन्तुष्ट हैं। मालवेमें ही होल्करका बल बहुत बढ़ा हुआ था। सम्भव है कि स्वयं मल्हारिराव कुछ न करें पर सतर्क रहना ही उचित है।

उनको अपने संरक्षक माधवराव पेशवाकी भी रक्षा करनी थी। उनके काका राघोबा उनसे मन ही मन बुरा मानते थे और अनिष्ट साधनका अवसर ढूँढ़ते रहते थे। ऐसी अवस्थामें पेशवाकी स्थिति भी ऐसी थी कि उसकी सतत रक्षा की जाय।

पानीपतकी लड़ाईसे जो क्षति मराठोंको हुई थी उसकी पूर्ति करनी थी। यह क्षति बड़ी ही व्यापक थी—न जाने कितना रुपया नष्ट हुआ, न जाने कितने सिपाही मारे गये, न जाने कितने नामी सर्दार और सेनापति हत हुए। पर सबसे बड़ी हानि जो हुई वह नैतिक थी। भारत, विशेषतः उत्तर भारत जो प्रायः हिन्दुस्तान नामसे प्रसिद्ध है, अभी तक मराठोंको अजेय समझता था, पर अब उसकी यह धारणा जाती रही। इस पराजयने लोगोंके हृदयोंसे मराठोंका डर निकाल दिया। इतना ही नहीं, लोगोंको इतना समय मिल गया कि यदि फिर मराठे सिर उठावें तो उनका सामना किया जा सके। अँगरेज ग्रंथकार कहते हैं कि यदि पानीपतमें मराठोंकी जीत हुई

होती तो शायद आज भारतमें अँगरेजी राज्य ही न होता। इधर मराठोंमें एक प्रकारका अनुत्साह और नैराश्य आगया था। उनको अपने पराक्रममें आप ही विश्वास न रहा था । यह बड़ी ही दुःख-वार्ता थी। निरुत्साहीके बराबर कोई अशक्य नहीं है, भीरुके बराबर कोई दुर्बल नहीं है । जिस मराठा जातिकी यह आकांक्षा थी कि समस्त भारत-में मराठोंद्वारा पुनः हिन्दू साम्राज्य स्थापित किया जाय, जिस मराठा जातिके आदिसञ्चालक छत्रपति शिवाजीका यह उद्देश्य था कि पवित्र भारतभूमिका शासन गो-ब्राह्मण-वेदरक्षक आर्य्य जातिसे भिन्न किसी जातिके हाथमें कदापि न रहने पावे, वह अपनी शक्ति-योंको आप ही संकुचित कर रही थी। उसको फिरसे संभालना था। उसमें फिरसे स्वाभिमान उत्पन्न करके उसे विजयाकांक्षी बनाना था। साथ ही, परजातियों, परदेशों और पर राष्ट्रोंको यह बतलाना था कि मराठा जाति अभी गतश्री नहीं हो गई है । यह बहुत ही असा-धारण काम था। हम आगे चलकर देखेंगे कि माधाजी इसे कहाँ तक कर सके और यदि उनको पूर्ण सफलता न हुई तो इसके कारण क्या थे ।

४—राजनैतिक जीवनका प्रारम्भिक काल।

जागीर मिलनेपर माधवरावने कुछ समय अपना स्थान सुदृढ़ करनेमें बिताया। उन्हें जागीरकी समुन्नतिके साथ साथ पूना-दर्बारमें अपने विरोधियोंको शान्त करना था। इन दोनों कामोंमें उनको प्रशंसनीय सफलता हुई।

संवत् १८२३ में मल्लारिराव होलकरका देहान्त हुआ। उनके पुत्र खण्डेरावकी मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। अतः खण्डेरावके पुत्र मालेराव राज्यके अधिकारी हुए। ये शिशु थे और इनकी माता स्वनामधन्या अहल्याबाई इनकी ओरसे राज्यका शासन करती थीं। अधिकारी होनेके नौ महीनेके भीतर ही मालेरावका भी देहान्त हो गया। अब अहल्याबाई स्वयं अपने नामसे ही राज्य करने लगीं।

उनके मंत्री गङ्गाधर यशवन्तने उनसे कोई लड़का गोद लेनेको कहा। उन्होंने ऐसा करना स्वीकार न किया। तब उसने राघोबाके पास पत्र भेजा और उनको यह लालच दिलाई कि यदि मेरी इच्छाके अनुकूल लड़का गोद लिया गया तो आपको बहुत कुछ भेंट करूँगा। राघोबा इस प्रलोभनमें आ गये। उन्होंने इस अवसरको बड़ा ही अच्छा समझा और अहल्याबाईको दबानेके लिये एक सेना प्रस्तुत की।

पर अहल्याबाई साधारण स्त्री न थीं। राघोबाकी बन्दर-घुड़कियोंने उनपर कुछ भी प्रभाव न डाला। उन्होंने अपनी सेनाका नेतृत्व तुकोजी होल्करको सौंपा और स्वयं युद्धक्षेत्रमें चलनेके लिये प्रस्तुत हुईं। तुकोजी राजवंशके न थे, पर बड़े ही धीर वीर और उत्साही पुरुष थे। मल्हारिरावके समयमें इन्होंने कई लड़ाइयोंमें नाम पाया था और अहल्याबाईकी ये सदा पुत्रवत् सेवा करते थे। अहल्याबाईके शासन-कालमें इन्होंने राज्यके यश और क्षेत्रका बहुत विस्तार किया और उन धर्म्मप्राणा महाराणीके देहान्त होनेपर इन्दौरकी, जो अहल्याबाईके समयमें होल्कर राज्यकी राजधानी हो गई था, गद्दीपर बैठे। इन्दौरके नरेश इन्हींके वंशज हैं।

इधर राघोबाके उद्देश सफल होनेके साधनोंका अभाव था। साधारण महाराष्ट्रजनता इन्दौर पर आक्रमण किये जानेके विरुद्ध थी। बड़े सरदारोंमें भोंसले और शिंदे इस प्रस्तावके विरोधी थे। जब माधवरावको अपनी सेना लेकर जानेकी आज्ञा दी गई तो वह पूनेसे कुछ दूर पर पड़ाव डालकर बैठ रहे। जब पेशवाने इस बात पर रोष प्रकट किया तो आगे बढ़े; परन्तु स्वयं माधवराव पेशवाको यह बात पसन्द न थी। वे स्वतंत्रप्रकृति और साहसी पुरुष थे और अपने काकाकी चालोंसे असन्तुष्ट थे। अन्तमें उन्होंने इन्दौरका आक्रमण बन्द कर दिया।

पर सेना प्रस्तुत हो चुकी थी और राघोबाने उसका उपयोग करना चाहा। उन्होंने चाहा कि यह सेना दिल्ली पर आक्रमण करे। उस समय दिल्लीका प्रबन्ध नजीबखाँ (नजीबुद्दौला) के हाथमें था। पर माधवरावको यह प्रस्ताव भी पसन्द न था। मराठोंका बल अभी पर्य्याप्त न था और अहमदशाहका भी भय था। इस भयके निर्मूल न होनेका यही प्रमाण है कि सं० १८२४ में जब सिक्खोंने दिल्लीको

सर करना चाहा तो अहमदशाह फिर पञ्जाब आये और सिक्खोंको दमन करके घर लौट गये।

इन सब कारणोंसे माधवराव दिल्लीकी ओर न बढ़े। उन्हें राघोबाको प्रसन्न करनेकी कोई प्रबल इच्छा भी न थी। उनके पास १५,००० चुने सवार थे। इनकी सहायतासे उन्होंने मालवामें अपना स्थान सुदृढ़ करना आरम्भ किया। धीरे धीरे उन्होने अपने जागीरके आसपासके प्रदेश पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि कुछ कालमें नर्म्मदा और चम्बल नदियोंके बीचका अधिकांश प्रांत उनके हाथमें आगया। कुछ भाग पर तो वे स्वयं शासन करते थे; शेषसे कर या चौथ लेते थे।

परन्तु सं० १८२६ के लगभग मराठी सेना उत्तर भारतकी ओर बढ़ी। इसके प्रधान नायक वीसाजी कृष्ण थे। माधवराव शिंदे और तुकोजी होल्कर भी अपने अपने साथ १५,००० सवार लेकर इसमें सम्मिलित हुए। चम्बल पारकरके ये लोग पहले जयपुर राज्यमें घुसे। वह इनका सामना न कर सका और नष्टभ्रष्ट हो गया। वहाँसे चलकर ये लोग भरतपुर पहुँचे।

इस समय भरतपुरमें सूरजमलके पुत्र रणजीतसिंह राज्य कर रहे थे। भरतपुर राज्यकी दशा उन दिनों अच्छी न थी। वे थोड़े ही दिन पहले नजीब खाँ और जयपुर राज्यसे लड़कर हार चुके थे, अतः वे मराठोंके सामने ठहर न सके। उनका राज्य भी चौपट किया गया। अन्तमें बहुत कुछ कर देकर उन्होंने अपना पीछा छुड़ाया।

भरतपुरसे चलकर मराठी सेना दिल्ली पहुँची। उसका उद्देश्य यह था कि मराठोंको चम्बल और यमुनाके मध्यवर्ती प्रान्तसे चौथ मिला करे। हम अगले अध्यायमें देखेंगे कि पानीपतके आठ वर्ष पीछे फिर दिल्लीके पास आकर मराठोंने क्या किया।

५—माधवराव और दिल्लीका साम्राज्य।

अभी तक जो घटनाएँ उल्लिखित हुई हैं उनमें माधाजी प्रधान भाग न ले सके थे, पर इस अध्यायमें उन घटनाओंका वर्णन होगा जिन्होंने माधवरावको भारतका प्रमुख नेता बना दिया। इनके सङ्घटित होनेमें कई वर्ष लगे और बीचमें वर्षोंका अन्तर भी पड़ता गया, परन्तु इनका आपसमें ऐसा सम्बन्ध है कि एक साथ लिखना ही रोचक प्रतीत होता है।

हम प्रथम अध्यायमें लिख चुके हैं कि द्वितीय आलमगीरके मारे जानेके समय युवराज अली गौहर अवधके नव्वाब—वजीरकी शरणमें थे। पिताके मरनेका समाचार पाकर उन्होंने 'शाह आलम' की उपाधि धारण की। उन्हीं दिनों अँगरेजोंसे बङ्गालके उत्साही और देशप्रेमी नव्वाब मीर कासिमसे लड़ाई चल रही थी। मीर कासिमकी सहायता शाह आलम और नव्वाब वजीर शुजाउद्दौलाने भी की, परन्तु बक्सरकी लड़ाईमें अँगरेजोंकी जीत हुई। परिणाम यह हुआ कि सम्राट् (शाह आलम) ने कम्पनीको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सौंप दी। स्वयं वे दिल्ली न गये, प्रत्युत इलाहाबादमें रहने लगे। नव्वाब वजीर और अँगरेज उनकी मिलकर रक्षा करते थे। परन्तु उनका जीवन सुखी न था। उनकी दीन दशाका अनुमान इसीसे हो सकता

है कि इलाहाबादके अँगरेजी सैनिक अफसरके कहनेसे उनको अपने महलका बाजा बन्द करना पड़ा !

अस्तु, इस समय दिल्लीका शासन नजीबुद्दौला कर रहे थे। जब मराठी सेनाने दिल्लीपर आक्रमण किया तो उन्होंने सन्धि करनी चाही। उनके और मराठा-सेनापति वीसाजी कृष्णके मध्यस्थ तुकोजी होल्कर थे। होल्कर-वंश सदासे देशी मुसलमानोंकी रक्षा करता आया था। तुकोजी इसी लिये नजीबका पक्ष लेते थे। दूसरे, वे नजीब ऐसे व्यक्तिको बहुत रुष्ट करना ठीक नहीं समझते थे। नजीबके प्रयत्नसे ही पानीपतकी लड़ाईका परिणाम मराठोंके विरुद्ध हुआ था, क्योंकि उसने ही अवधके नव्वाब और अन्य देशी मुसलमानोंको अहमदशाहसे मिलाया था। अब भी वह अहमदशाहका कृपापात्र था।

नजीब स्वयं मराठी सेनामें आया और अपने लड़के जाब्ताखाँका हाथ तुकोजीके हाथमें देकर उसको तुकोजीकी शरणमें डाल गया। मराठोंकी जो कुछ माँग थी उसे भी नजीबने पूरी कर दी। चम्बल और यमुनाका अन्तर्वेद मराठोंके हाथमें आ गया। इसके उपरान्त नजीब अपने बसाये हुए नजीबाबाद कसबेको चला गया। वहीं उसकी मृत्यु हुई।

माधवरावको यह सन्धि अभीष्ट न थी, वे नजीब और पठानोंके चिर विरोधी थे। जब उनके सामने संधिका प्रस्ताव रक्खा गया तो उन्होंने इन शब्दोंमें अपनी सम्मति प्रकट की—“देशकी इतनी दुर्दशा हुई है; मेरे भाई और भतीजे मारे गये हैं; मेरा सदाके लिये अङ्गभङ्ग हो गया है; मैं इसके लिये बदला लेना चाहता हूँ। मेरे मित्र इस मुसल्मान रईसको अपना भाई बनाना चाहते हैं, पर यह बात मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सकती। फिर भी मैं पेशवाका सेवक

हूँ; यदि वे इस संधिको स्वीकार करते हैं तो मेरा कर्तव्य यही है कि उनकी आज्ञाका पालन करूँ।" यह उत्तर बड़े महत्त्वका है। इससे उस नीतिका पता लगता है जिसका अनुकरण माधवरावने आजन्म किया। बहुतसी बातोंमें वे स्वतंत्र विचार रखते थे; जब अवसर मिलता था तो उनके अनुसार काम भी करते थे; उन्हीं विचारोंमेंसे मुसल्मानोंसे बदला लेने और उनके बलको नष्ट कर देनेका विचार भी था; पर वे सदैव महाराष्ट्रसङ्घको एक अभेद्य संस्था बनाये रखना चाहते थे और अपनी इच्छाके विरुद्ध होने पर भी पेशवाकी स्पष्ट आज्ञाका कभी उल्लङ्घन नहीं करते थे। यदि और मराठोंमें यही भाव होता तो आज भारतका इतिहास न जाने क्या रूप धारण करता।

अस्तु, नजीबके देहान्त होने पर उसके पुत्र जाब्ताखाँको उसका पद मिला। इस व्यक्तिमें अपने पिताकी आधी योग्यता भी न थी और यह स्वभावका महामूर्ख, क्रूर और कपटी था। इसने और प्रबन्ध करना तो दूर रहा बड़ा भारी अत्याचार यह किया कि वह दिल्लीके राजवंशकी बेगमों और कुमारियोंसे, जो अभी राजप्रासादमें थीं, कुसम्बन्ध जोड़कर उनका सतीत्व कलङ्कित करने लगा। इधर मराठे रोहिलोंके पीछे पड़े थे। रोहिलखण्डमें कई छोटे छोटे पठान सर्दारोंके ऊपर एक प्रधान थे। इनका नाम हाफिज रहमतखाँ था। ये नजीबके ही नियत किये हुए थे और इनकी रक्षा करना जाब्ताका कर्तव्य था, पर उसने यह सब कुछ भी न किया।

संवत् १८२८ में मराठे रोहिलखण्डसे फिर दिल्लीकी ओर झुके। उनके आते ही जाब्ता भागा और अपनी जागीरमें जाकर तुकोजी होल्करसे सन्धिके प्रस्ताव करने लगा। इधर सम्राट् शाह आलम

मराठोंसे पत्रव्यवहार कर रहे थे। उनके कार्य्यकर्ता हिसामुद्दौला नामक एक मुगल रईस थे और मराठोंकी ओरसे तुकोजी प्रयत्न कर रहे थे। इलाहाबादमें रहना शाह आलमको रुचता न था। वे दिल्ली आना चाहते थे। इस सहायताके लिये मराठोंको दस लाख रुपये भी दे रहे थे। वे चाहे जैसे हो दिल्लीमें ही अपना कल्याण समझते थे। दिल्लीकी प्रजा भी चाहती थी। वह रोहिलों, विशेष कर जाब्ताखाँ, के शासनसे तङ्ग आगई थी। उसका ऐसा विश्वास था कि शाह आलमके लौट आनेसे कदाचित् कुछ सुख मिले।

अवधके नव्वाब शुजाउद्दौला और अँगरेज कर्म्मचारियोंको शाह आलमका दिल्ली जाना पसन्द न था। कमसे कम वे यह नहीं चाहते थे कि सम्राट् मराठोंसे मैत्री करें। पर शाहने किसीकी न मानी। वे थोड़ेसे मनुष्य लेकर फर्रुखाबाद तक आये। यहाँ माधवराव उनसे आकर मिले और अपने साथ दिल्ली ले गये। २५ दिसम्बर सन् १७७१ (सं० १८२८) को सम्राट्ने दिल्लीमें प्रवेश किया। आते ही जाब्ताखाँके विरुद्ध प्रबन्ध होने लगा। उसके पास घासगढ़, सहारनपुर, सकरवाल और पत्थरगढ़ नामक चार सुरक्षित स्थान थे। मराठोंने इनको दमन करनेका विचार किया। उनका सम्राट्के मुख्य अमात्य मिर्जा नजफखाँसे बड़ा प्रोत्साहन मिला। यह मिर्जा फारससे आये थे और बड़े ही योग्य व्यक्ति थे। इधर शुजाउद्दौलाने भी सम्राट्का ही साथ देना उचित समझा। अभी तक उनकी उपाधि नव्वाब-वजीरकी थी। वे सम्राट्का साथ देनेमें ही अपना लाभ समझते थे। दूसरी बात यह थी कि उनकी समझमें सम्राट्का मराठोंके हाथमें पड़ जाना अनुचित था। एक तो यही भूल हो गई कि

उनको दिल्ली आनेके लिये मराठोंसे सहायता लेनी पड़ी, दूसरे अब और मराठोंका दबाव बढ़ना मुसल्मानी समृद्धिके लिये अनिष्ट कर होगा।

इधर जाब्ताखाँने रोहिलोंको उभाड़ा, पर एक ओर तो मराठे, दूसरी ओर शुजा—बीचमें घिरकर रोहिले कुछ भी न कर सके और जाब्ताको पत्थरगढ़से भागना पड़ा। जल्दीमें वह अपने पिताका इकट्ठा किया हुआ सारा धन और अपना कुटुम्ब छोड़ गया। धन तो मराठोंके हाथ लगा और उसका लड़का गुलाम कादिर कैद कर लिया गया। इतना ही नहीं; उसके पिताने राजवंशकी महिलाओंके साथ जो अत्याचार किये थे उनके बदलेमें उसका अंग-भंग किया गया और वह सम्राट्के जनानखानेमें चाकरी बजानेके लिये भेज दिया गया।

इन बातोंसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि सिंधियाकी इच्छा पूर्ण होगी और जाब्ताको दण्ड मिलेगा, पर भावी कुछ और थी। उस समयकी राजनैतिक परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि पेचके भीतर पेच पड़ते थे और राजनैतिक वातावरण क्षण क्षणमें अपना रूप बदलता था।

जिन दिनोंमें ये सब बातें हो रही थीं उन्हीं दिनों न जाने क्यों शाह आलम मराठोंसे असन्तुष्ट हो गये। सम्भवतः यह शुजाउद्दौलाकी चाल थी। सम्राट्को समझा दिया गया कि मराठे आपका अपमान करते हैं। उधर रोहिले भी मिला लिये गये। नव्वाबने उनके देशसे मराठोंको निकाल देनेका वचन दिया और इसके लिये रोहिलोंने चालीस लाख रुपया देनेको कहा। इस विषयकी एक संधि सं० १८२९ में हो गई और अँगरेजी कर्म्मचारी इसके साक्षी हुए। सब लोगोंने मिलकर यह प्रबन्ध किया कि पानीपतकी भाँति फिर मुसलमान मात्र एकत्र होकर हिन्दू मराठोंको निकाल दें।

माधवराव इस भावी लड़ाईके लिये प्रस्तुत थे। वे चाहते थे कि एक बार खुलकर युद्ध हो जाय जिससे आगेके लिये निपटारा हो जाय। परन्तु और मराठा सर्दार, विशेषतः तुकोजी होल्कर, उनसे सहमत न थे। उन्होंने शाह आलमकी यह चाल देखकर जाब्ताको, जो पहले-हीसे ऐसी प्रार्थना कर रहा था, आश्रय दिया और जाटोंको अपनी ओर मिलाया।

माधवरावको बार बार इस प्रकार पक्ष पलटना पसन्द न आया। फिर वे मुसलमानों, विशेषकर नजीबके वंशजों, के कट्टर विरोधी थे। इस लिये कुढ़कर अपनी सेना लेकर अलग हो गये और जयपु-रकी ओर चले गये।

मराठोंके उभाड़नेसे जाटोंने बल्लुमगढ़ नामक एक किलेको घेरा। यह एक बलूच सर्दारके पास था। उसने दिल्लीसे सहायता माँगी। मिर्जा नजफ स्वयं एक मुगल सेना लेकर कुमक पर आये। इधर तुकोजी जाटोंकी ओरसे लड़ाईके लिये आये। दिल्लीसे लगभग ५ कोस पर बदरपुरमें लड़ाई हुई। मिर्जा हार गये और दिल्लीको लौटे। उनके पीछे पीछे होल्कर भी पहुँचे। मिर्जा वहाँ भी सामना करना चाहते थे पर सम्राट् डर गये। उनके कहनेसे हिसामुद्दौलाने प्रासादके द्वार खोल दिये। परिणाम यह हुआ कि मिर्जा नजफ दर्बारसे निकाले गये, जाब्ताखाँको अमीरुलउमराका पद मिला और मराठोंको गङ्गा यमुनाके अन्तर्वेदका वह प्रदेश जो सम्राट्के हाथमें था मिल गया।

यह घटना सम्राट्के दिल्ली आनेके एक साल पीछे, अर्थात् स० १८२९ की है। इसके कुछ ही काल पीछे मराठोंको दक्षिण लौटना पड़ा, क्योंकि पूनेसे माधवराव पेशवाकी मृत्युका समाचार आया।

उनके चले जानेसे कई वर्षोंके लिये दिल्लीका राज्य उनके हस्तक्षेपसे बचा रहा।

यह अवस्था लगभग बारह वर्ष तक रही। इस बीचमें माधवरावने क्या क्या किया, वह अगले अध्यायमें बतलाया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस समयमें अपने कामोंसे उन्होंने राजनीतिज्ञताके लिये बड़ा नाम पाया।

हिन्दुस्तानसे जाते समय मराठे कई स्थानोंमें अपनी सेनाके छोटे छोटे टुकड़े छोड़ गये थे। इसके साथ ही, जाब्ताखाँ और हिसामुद्दौलासे भी उनका पत्रव्यवहार जारी था। इधर शुजाउद्दौला मिर्जा नजफके पक्षमें थे। वे मराठोंको रोहिलखण्डसे निकालनेका वचन दे चुके थे। बस यह बड़ा अच्छा अवसर था। पर एक नई बात यह हो गई थी कि रोहिले स्वयं मराठोंको निकलवाना नहीं चाहते थे। इन थोड़ेसे मराठोंसे उनको कोई विशेष कष्ट तो था ही नहीं, उलटे उनके निकलनेपर चालीस लाख देना पड़ता।

होल्करने शाह आलमसे जो संधि की थी उसके अनुसार इलाहाबादके पासका प्रदेश मराठोंको दे दिया गया था। अँगरेजोंको यह बात पसन्द न थी। इस लिये उन्होंने थोड़ीसी सेना मराठोंके विरुद्ध भेजी। शुजा भी, इस सेनामें आ मिले और दबाव डालकर रोहिलोंको भी सम्मिलित किया गया। इस संयुक्त सेनाके सामने मराठोंको हटना पड़ा। पहले वे इटावेकी ओर आये और फिर १८३० में दक्षिण चले गये। कम्पनीने लगभग चालीस लाख रुपया लेकर यह प्रान्त शुजाके हाथ बेच दिया। यह कहना कठिन है कि ऐसा करना न्यायसंगत था या नहीं। प्रसिद्ध लेखक मैकाले (Macaulay) का कथन है—" The provinces which had been torn from the Mogul were

made over to the government of Oudh for about half a million sterling."जो प्रान्त मुगल (सम्राट्) से बलात् छीन लिये गये थे, वे अवध सर्कारको लगभग ५ लाख पौण्ड (५० लाख रुपये)में दे दिये गये। " इसके उत्तरमें कीन (Keene) कहते हैं "they had been abandoned by the Emperor when he proceeded to Dehli, contrary to the remonstrance of the Bengal Council and though his own lieutenant had reported that he could not regard the order to give them up to the Marathas as a free act of his masters." जब बङ्गाल-कौंसिलके मना करनेपर भी सम्राट् दिल्ली गये तो उन्होंने इन जिलोंको त्याग दिया। उनके नायबने * स्वयं कहा था कि उन्होंने इन जिलोंको मराठोंको दे देनेकी जो आज्ञा दी थी वह अपनी स्वतंत्र इच्छासे नहीं दी थी। "

मेरी समझमें यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। इससे अच्छा और सच्चा उत्तर कीनने ही आगे चलकर दिया है "It would, indeed, have been an easy step towards the ruin of the British to have allowed the Marathas to take possession of this tract" "मराठोंको इस प्रान्त पर अधिकार जमाने देना अँगरेजोंके सर्वनाशकी पहली सीढ़ी होती।" बस इसी भयने कम्पनीके कर्म्मचारियोंको न्यायसे विमुख होकर सम्राट्की इच्छाको उल्लङ्घन करने पर बाध्य किया। यह उनका सौभाग्य था कि इस दुष्कर्म्मके लिये उनको शुजाउद्दौलासे पुरस्कार भी मिला। अस्तु; कुछ काल पीछे सम्राट्से इस प्रान्तका पट्टा भी लिखवा लिया गया—इससे अँगरेज लेखकोंकी दृष्टिमें सब दोष पाप दूर हो गया।

* मैं ठीक नहीं कह सकता कि यह कौन था, शायद मिर्जा नजफसे तात्पर्य्य है।

फिर रोहिलखण्डकी बारी आई। शुजाउद्दौलाने थोड़े ही दिनोंमें उस प्रान्तसे बचे बचाये मराठोंको बाहर निकालकर रोहिलोंसे रुपया माँगा। यह बात उनको स्वीकार न थी। वे टालना चाहते थे पर ऐसा कर न सके। शुजाकी सहायताके लिये एक अँगरेजी सेना आई और रोहिलखण्ड पर आक्रमण किया गया। सम्राट्ने भी एक सहायक-सेना भेजी, यद्यपि देरमें पहुँचनेसे वह बहुत उपयोगी न हुई। रोहिलोंके संरक्षक हाफिज रहमानखाँने इस प्रबल शक्तिका सामना करना चाहा पर स्वभावतः उनका प्रयत्न निष्फल हुआ। कटराकी लड़ाईमें वे स्वयं मारे गये। उनके मरते ही रोहिलोंका बल टूट गया। उनका प्रान्त शुजाके राज्यमें मिला लिया गया। केवल उसका एक टुकड़ा फैज़ुल्लाखाँ नामक एक सर्दारको दे दिया गया। वर्तमान नव्वाब साहब रामपुर उन्हींके वंशज़ हैं।

इस युद्धके लिये निष्पक्ष सम्मति देना कठिन है। शाह आलमका रोहिलोंने क्या बिगाड़ा था यह कहना कठिन है, पर कई लेखकोंका यह कथन है कि वे साम्राज्यके उतने आज्ञाकारी सेवक न थे जैसा कि उनको होना चाहिये था; दूसरे उनसे मराठोंसे मैत्री थी। पहली बातमें जो कुछ तत्त्व हो, पर मेरी समझमें दूसरी बात निःसार है। यदि मराठोंसे मैत्री करना बुरी बात थी तो सम्राट्का दिल्ली जाना भी बुरा था; उनको इलाहाबादके किलेका ही सुख भोगना चाहिये था। नव्वाब-वजीरका कार्य्यक्रम भी सदोष प्रतीत होता है। यह ठीक है कि उन्होंने रोहिलखण्डसे मराठोंको निकाल दिया पर अब यह काम ऐसा न था कि उनको चालीस लाख मिलें, क्यों कि मराठोंका बल आप ही घट गया था। इसके अतिरिक्त उनको रोहिलोंसे सदैव सहायता मिलती आई थी। अँगरेजोंका ऐसे कार्य्यमें योग

देना और भी निष्कारण था। कई लोगोंने तत्कालीन गवर्नरजनरल वारन हेस्टिंग्जके बचावमें बहुत कुछ कहा है पर जहाँ तक समझमें आता है इन लोगोंका एकमात्र परिचालक लोभ था। स्वार्थसे अन्धे बनकर इन लोगोंने एक वीर जातिके स्वातंत्र्यको मिट्टीमें मिला दिया।

इसके कुछ ही दिन पीछे शुजाकी मृत्यु हुई। कहते हैं कि हाफिज रहमतखाँकी एक लड़की उनके हाथ लगी। उसने अवसर पाकर उनको मार डाला। उनके पुत्र आसिफुद्दौला उनके पीछे अवधकी गद्दी पर बैठे।

इन सब झगड़ोंने मिर्जा नजफखाँको फिर प्राधान्य प्रदान किया। वे शाह आलमके मुख्य अमात्य हुए। इधर हमारे पूर्वपरिचित मित्र जाब्ताखाँने भरतपुरके जाटोंको उभाड़ दिया। पर नजफखाँने अपने एक सेनानी मुहम्मद बेग हमादानीको भेजकर आगरेका किला उनसे छीन लिया। इस पर भी जाट शान्त न हुए। उनकी सेनाके नायक सम्रू थे। इस व्यक्ति और इसकी उपपत्नी बेगम सम्रूका नाम उस समयके इतिहासमें बीसों बार आता है। परिशिष्ट नं०२ में इनका विस्तृत वर्णन दिया जायगा। नजफने इस सेनाका भी सामना किया। पहले मथुराके पास होडल नाटक स्थानमें, फिर डीगमें लड़ाई हुई। इस लड़ाईमें जाट पूर्णतया हार गये और सम्रू मिर्जा नजफसे आकर मिल गया।

यह झगड़ा समाप्त होने ही न पाया था कि जाब्ताखाँने सिक्खों-को उभाड़ा। पहले उनके विरुद्ध मजदुद्दौला अब्दुल अहदखाँ भेजे गये, पर उनकी हार हुई। कहते हैं कि सिक्खोंको प्रसन्न करनेके लिये जाब्ताखाँने सिक्ख धर्म्म धारण कर लिया। जो कुछ हो, मिर्जा नजफखाँ स्वयं उनके विरुद्ध चले। उनके साथ अवधके एक सर्दार

लताफतखाँ और उनके ५००० सिपाही भी थे । पानीपतमें लड़ाई हुई और जाब्ताकी एक प्रकारसे हार हुई । फिर भी सम्राट्की सेनाकी ऐसी जीत न हुई कि जाब्ताको कोई कठिन दण्ड दिया जा सकता । उसकी जागीर उसको लौटा दी गई और मिर्जा नजफका उसकी बहिनसे विवाह हो गया । जाब्ताकी जागीरके पास ही सम्रूको एक जागीर मिली । यह मेरठ जिलेमें है । वहीं सरधनेमें उसने अपना स्थान जमाया । यहीं सं० १८३५ में इसकी मृत्यु हुई और इसकी जागीर बेगम सम्रूको मिली ।

कुछ ही दिन बाद सिक्खोंने फिर विद्रोह किया । इस बार उनके विरुद्ध राजकुमार जवानबख्त और अब्दुल अहद भेजे गये, पर हार गये । अन्तमें मिर्जा नजफने उनका दमन किया ।

सम्वत् १८३९ में इस योग्य मिर्जाकी मृत्यु हुई । इसमें सन्देह नहीं कि अपनी असाधारण योग्यतासे इन्होंने डूबते साम्राज्यको सँभाल रक्खा था और मुसल्मानी नामकी प्रतिष्ठा बना रक्खी थी ।

मिर्जाके देहान्तके पीछे सम्राट् चाहते थे कि उनका पद मिर्जा शफीखाँको दिया जाय, पर उनपर बहुत कुछ दबाव डाल कर यह पद मिर्जाके दत्तक पुत्र अफ्रासियाबखाँको दिलवाया गया । इस पर कुछ दिनों तक दोनों दलोंमें खूब झगड़े चले और साम्राज्यकी शक्ति, जिसे मिर्जा नजफने बड़ी कठिनाइयोंसे सङ्गठित किया था, खूब क्षीण-की गई । अन्तमें १८४० में मिर्जा शफीका खून कराके अफ्रासियाब खाँने अपने चित्तको सन्तुष्ट किया ।

मुझे आशङ्का है कि यह सब पढ़ते पढ़ते पाठक उकता गये होंगे । इसमें माधवरावका कहीं नाम भी नहीं आता, इससे यह एक प्रकारकी असङ्गत वार्ता प्रतीत होती है । पर वस्तुतः ऐसा नहीं है । अभी तक

महादजी कई निजके कामोंमें इतने व्यग्र थे कि दिल्लीकी अवस्थाकी ओर विशेष ध्यान न दे सकते थे, पर अब उनको छुट्टी मिल गई थी और वे फिर हिन्दुस्तान (उत्तर भारत) की ओर आनेवाले थे। इस बीचमें साम्राज्यमें यह सब उलट फेर हो रहे थे। कभी एक व्यक्ति बल पकड़ता था, कभी दूसरा। जब जिसको अवसर मिलता वह अपने और अपने अनुयायियोंके लिये प्रधान प्रधान स्थान चुन लेता। लूट खसोटकी दशा यह थी कि जब मिर्जा नजफखाँकी आज्ञासे अब्दुल अहदखाँ पकड़ा गया तो उसके पास २० लाख रुपये निकले, यद्यपि वह दो ही वर्ष नौकर रहा था।

इन बातोंने शाह आलमको घबरा दिया। एक तो वे वृद्ध, दूसरे सुखेच्छु थे। उन्होंने अँगरेजोंकी शरण जानेमें अपना कल्याण समझा। इस उद्देश्यसे मिर्जा जवानबख्त लखनऊ भेजे गये। वहाँ उनसे और वॉरन हेस्टिंग्जसे भेंट हुई। हेस्टिंग्जने उनके लिये ४ लाख सालकी पेंशन नियत कर दी। पर इससे अधिक वे कुछ न कर सके। उस समय उनकी अपनी कौंसिलमें चलती न थी। वे खूब समझते थे कि यदि कम्पनीकी ओरसे कुछ न किया गया तो इस अवसरसे मराठे लाभ उठावेंगे, पर उनका वश न चलता था। इस लिये उन्होंने जवानबख्तको माधवराव शिंदेसे सहायता माँगनेकी सम्मति दी।

जवानबख्तके कुछ करने धरनेके पहले ही माधवराव आगरेकी ओर बढ़े। यहीं इनसे सम्राट्से भेंट हुई। इसी बीचमें मिर्जा शफीके भाईने अफ्रासियाबखाँको मार डाला। बस इसके पीछे सारा विरोध शान्तसा हो गया। जितने बचे खुचे मुगल सर्दार थे उन सबने चुपकेसे शिंदेके प्राधान्यको मान लिया। सम्राट्ने पेशवाको वकीलुलमुल्ककी उपाधि दी। शिंदे पेशवाके नायब बनकर काम करते थे।

यह भी माधवरावकी एक नीति थी । वे जानते थे कि उत्तरीय भारतमें सम्राट्की अभी बड़ी प्रतिष्ठा है, इस लिये उनसे उपाधि लेकर काम करनेमें सुभीता होगा । अब शाह आलमके नामपर साम्राज्यका सारा प्रबन्ध माधवराव ही करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि माधवरावका जीवनका उद्देश्य सफल हुआ और दिल्लीमें हिन्दुओंका अधिकार जम गया।

परन्तु प्रत्येक महाशयके मार्गमें महद्विघ्न भी होते हैं। राष्ट्रका खर्च चलानेके लिये शिंदेने अपना ध्यान साम्राज्यके बड़े बड़े जागीरदारोंकी ओर फेरा। इनमेंसे कई तो अन्यायसे जागीरें दबा बैठे थे और कई उन शर्तोंको पूरा नहीं करते थे जिनपर उनको जागीरें दी गई थीं। शिंदेने इनसे हिसाब माँगना आरम्भ किया। बस इससे घबराकर कई जागीरदारोंने शस्त्र ग्रहण कर लिया। उन्होंने समझा कि हमारी जागीरें जब्त कर ली जायँगी ! उधर राजपूत बिगड़ खड़े हुए। शिंदेकी सेना राघोगढ़के खीची राजपूतोंसे लड़ रही थी। संभवतः खीचियोंकी सहायता करनेके लिये ही अन्य राजपूत शिंदेके विरोधी हो गये। जो कुछ हो जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, सभी मिल गये। मुगल जागीरदारोंके असन्तोषसे इनको और भी अपने विजयकी आशा थी। एक और शत्रु भी इसी समय सामने आया। जाब्ताखाँकी मृत्यु हो चुकी थी और उसकी जागीर उसके लड़के गुलाम कादिरको मिली थी। यह भी शिंदेके शत्रुओंसे आकर मिल गया।

यह समय माधवरावके लिये बड़ी आपत्तिका था, पर ऐसे ही समय मनुष्यकी असाधारण योग्यताकी परीक्षा होती है। पहले शिंदेने भरतपुरके जाटोंको मिलाया। डीगका किला जो मिर्जा नजफके समयसे मुगल-राज्यमें मिला लिया गया था जाटोंको लौटा दिया गया। उनकी

सहायतासे माधवराव अलवरकी ओर हटे। वहाँसे अपनी सेनाका एक अंश लकबा दादाके साथ आगरे भेजकर वे स्वयं ग्वालियर चले गये। गुलाम कादिर स्वयं दिल्ली गया पर उसी अवसर पर बेगम समू वहाँ पहुँचीं। उनके पहुँचनेसे वह कुछ डरा। इतनेहीमें शिंदेके सरदार अम्बाजी इँग्लिया कुछ सेना लेकर दिल्ली पहुँचे। उनके जाते ही न जाने क्या हुआ कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता, पर शाह आलम गुलाम कादिरसे मिल गये और कादिरको अमीरुल उमराकी पदवी मिल गई। शिंदेको एक बड़ी बाधा यह थी कि कुमार जवान-बख्त उनके विरुद्ध थे और सम्राट्का चित्त इतना अव्यवस्थित था कि वे चुपके चुपके राजपूतोंसे पत्रव्यवहार कर रहे थे। स्यात् इन्हीं सब बातोंको सोचकर उन्होंने ग्वालियर छोड़नेका विशेष प्रयत्न नहीं किया। वहाँसे जब कई कारणोंसे पड़ाव उठा भी तो अपने वीर सेनापति लकवा दादाकी, जो आगरेमें घिरे पड़े थे, सहायता करके और उनको छुड़ाकर, शिंदेने मथुरामें डेरा डाल दिया।

इधर गुलाम कादिरने इस्माईल बेग नामक एक वीर, परन्तु स्वार्थी, सेनापतिको अपनी ओर मिलाया। ये दोनों दिल्ली गये और सम्राट्को समझाने लगे कि हम आपके आज्ञाधारी सेवक हैं और मराठोंको निकालनेमें ही साम्राज्यका हित देखते हैं। परन्तु सम्राट्ने इनको कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया। इस पर इन्होंने राजप्रासाद पर गोली चलाई। इससे घबराकर शाह आलमने माधवरावके पास मथुरा सन्देश भेजा। परन्तु शिंदे न आये। वे सम्राट्के अस्थिर चित्तका परिचय पा देख चुके थे। एक नहीं अनेक अवसरों पर शाह आलमने उन्हें धोखा दिया था। इस लिये वे स्वयं न गये, पर बेगम समरूसे उन्होंने सम्राटकी दशा कहला भेजी। बेगम भी कछ

समझ बूझ कर न गई। हाँ, सिंधियाने इतना किया कि अपने एक सम्बन्धी रायाजी शिंदेके साथ थोड़ेसे सवार भेज दिये।

गुलाम कादिरने सोचा कि देर करनेसे काम न चलेगा। जुलाई सन् १७८८ (सं० १८४५) को वह सम्राट्के पास गया और यह कह कर रुपया माँगने लगा कि मराठोंको निकालनेके लिये सेना प्रस्तुत है, उसको वेतन देनेके लिये द्रव्य चाहिये। लाला शीतलदास कोषाध्यक्षने कहा कि कोषमें रुपया नहीं है। इसपर गुलाम कादिरने शाह आलमके शस्त्र छीन लिये, उनको राजसिंहासनसे उतार दिया और उनके स्थानमें अहमदशाहके एक लड़केको बेदार बख्तके नामसे गद्दीपर बैठा दिया। इस्माईलबेग सीधा मनुष्य था। उसको तो समझा बुझाकर गुलाम कादिरने नगरकी रक्षाके लिये भेज दिया और आप तीन दिनतक स्वच्छन्द लूट मार करता रहा। जब उसने देखा कि इस्माईल नाराज हो गया है और लड़ाईके लिये प्रस्तुत है, तो ५ लाख रुपया उसके और उसके सिपाहियोंके लिये भेज दिया गया।

बेदार बख्तके सपुर्द बेगमोंसे रुपया छीननेका काम किया गया, पर जो कुछ मिला वह इतना कम था कि गुलाम कादिरको उससे सन्तोष न हुआ। फिर उसने अनुमान किया कि प्रासादमें कहीं छिपा धन है और शाहआलमको उसका भेद ज्ञात है। इस लिये उसने बूढ़े सम्राट्को बुलाया। जब उन्होंने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं है तो बेदार बख्तके हाथसे उनको कोड़े लगवाये गये। इतनेसे भी उसे सन्तोष न हुआ। ३० जुलाईको यही अत्याचार कई बेगमोंके साथ भी किया गया।

फिर भी गुलामकादिरकी तृप्ति न हुई। शाह आलमको उसने फिर तङ्ग करना आरम्भ किया। बेचारेने बार बार कहा "मेरे पास कुछ नहीं है।

मेरा पेट चीरो—उसमें जो कुछ हो ले लो" पर सुनता कौन? १० अगस्तको शाह आलम फिर बुलाये गये। जब उन्होंने छिपे धनके विषयमें फिर अपना अज्ञान प्रकट किया तो दुष्ट गुलामने कहा "फिर तुम्हारा जीना व्यर्थ है। तुमको अन्धा कर देना चाहिये।" शाहने कहा "ये आँखें साठ वर्ष तक कुरान पढ़ते पढ़ते धुँधली हो गई हैं, इनको छोड़ दो।" इस पर गुलामने उनके लड़कों और पोतोंको दुःख देना आरम्भ किया। घबरा कर शाह आलमने कहा "मेरी आँखें ले लो पर यह दृश्य न दिखलाओ।" गुलाम कादिरने तत्काल उनको पृथ्वीपर पटक दिया और उनकी एक आँख अपने छुरेसे निकाल डाली। दूसरी आँखके लिये उसने याकूब अलीको आज्ञा दी और जब उन्होंने स्वीकार न किया तो उनको मार डाला। फिर और लोगोंने शाह आलमकी दूसरी आँख भी निकाल ली। वह राजवंशके कुमारोंकी भी यही दुर्गति करनेवाला था, पर लाला शीतलदास कोषाध्यक्षके कहनेसे रुक गया।

अब वह अपना समय भाँति भाँतिके दुर्भोगोंमें व्यतीत करने लगा। राजकुमारियोंके साथ नानाप्रकारके अत्याचार किये गये और राजकुमारोंको उसके सामने नाचना गाना पड़ा। इधर नगरमें दूकानें बन्द हो गईं और लोगोंको अन्नकष्ट होने लगा। स्वयं राजवंश क्षुधार्त हो रहा था।

इस समयका वृत्तान्त लिखते दुःख होता है। पृथ्वी पर अनेक राज्य स्थापित होते हैं और नष्ट होते हैं, पर उनके नष्ट होनेकी रीति प्रायः ऐसी बुरी नहीं होती। अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेबके वंशजकी यह दुरवस्था! कहा जाता है कि इन सब दुःखोंको झेलनेमें, शाह आलमने बड़ा धैर्य्य दिखलाया। यदि उन्होंने इस धैर्य्यके साथ साथ

इसके कुछ ही पहले थोड़ीसी दृढ़ता और विचारशीलता दिखलाई होती तो उनकी यह दुर्गति कदापि न होती। इस कष्टके समय उनको अपने सच्चे मित्रोंकी पहचान हुई। वे फारसीके कवि थे। उनकी एक गजलका, जो उन्हीं दिनों लिखी गई थी, छायानुवाद इस प्रकार है:—

"दुःखकी आँधीने मेरे राज्यको छिन्न भिन्न कर दिया है। मैं साम्राज्यके आकाशमें सूर्य्यवत् चमकता था, पर सूर्य्य अब पश्चिममें डूब रहा है। यह अच्छा हुआ कि मैं अन्धा हो गया; अब मैं दूसरेको अपने सिंहासन पर बैठा न देखूँगा। इस संसारका वैभव ही मेरा रोग था, पर अब ईश्वरने मुझे स्वस्थ कर दिया है। मुझे अपने दुष्कर्म्मोंका उचित दण्ड मिल गया। मुगल और अफगान दोनोंने मुझे धोखा दिया। इस अफगान (गुलाम कादिर) ने मेरे साम्राज्यकी प्रतिष्ठा नष्ट कर दी है; भगवन्, अब तेरे सिवाय मुझ पर दया करनेवाला कोई नहीं है। परन्तु कदाचित् तैमूर शाह (यह अहमद शाह अब्दालीका लड़का और शाह आलमका दामाद था) मेरी सहायता करे, आर माधवजी सिंधिया, जो मेरे पुत्र समान है, अवश्य मेरा बदला लेगा।"

शाह आलमका अनुमान ठीक निकला—माधवरावने बदला लिया, पर बहुत देरमें। यह कहना कठिन है कि उन्होंने इतनी देर क्यों की। वे मथुरामें थे और गुलाम कादिरके पास कोई प्रबल सेना न थी। स्यात् उनको स्वप्नमें भी ऐसा विचार न हुआ होगा कि गुलाम कादिर ऐसे ऐसे अत्याचार करेगा।

अस्तु। मुहर्रमके लगभग मराठी सेना दिल्ली पहुँची। उसके नेता राना खाँ थे। इन लोगोंके आते ही प्रासादमें आग लग गई। लोगोंका

अनुमान है कि गुलाम कादिरने ही आग लगा दी थी । जो कुछ हो, मराठोंने आग बुझवाई और जहाँतक हो सका शाह आलम और राजवंशके और लोगोंके कष्टको निवारण करनेका प्रयत्न किया ।

उधर तुकोजी होल्करको पेशवाने शिंदेकी सहायताके लिये भेजा। मराठा सेनाने गुलाम कादिरका पीछा गया । वह कुछ दिन तो मेरठके किलेमें छिपा रहा । फिर वहाँसे अकेला भागा । उसके घोड़ेके साजमें बहुतसे बहुमूल्य हीरे जवाहिर छिपे थे। पाँच छः कोस चलकर उसका घोड़ा भड़का और उसे एक खड्डेमें पटक कर भागा । ऐसा अनुमान किया जाता है कि वह शिंदेके एक फ्रेञ्च सेनानी मसियर लेस्टोनोजके हाथ लगा और वह सारा सामान लेकर नौकरी छोड़ कर फ्रांस चला गया। गुलाम कादिरको भीखा नामक एक ब्राह्मणने पकड़ा । वह माधवरावके सामने लाया गया । शिंदेने उसे 'तशहीर' का दण्ड दिया । वह पूँछकी ओर मुँह करके एक गधेपर बिठाया गया और नगरमें घुमाया गया । प्रत्येक दूकानसे उसे एक एक कौड़ीकी भीख माँगनी पड़ी । इससे चिढ़कर उसने गाली बकना आरम्भ किया, इसपर उसकी जिह्वा खींच ली गई, फिर उसकी आँखें फोड़ी गईं और हाथ, पाँव, नाक और कान काट लिये गये । ऐसी दशामें वह दिल्ली भेजा गया, पर सिपाहियोंने उसे रास्तेहीमें फाँसी दे दिया और उसका शरीर अंधे शाह आलमके सामने ला कर रक्खा गया ।

यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि गुलाम कादिरने क्या समझ कर ऐसे ऐसे अत्याचार किये, पर जो कुछ हो, परलोककी तो परमात्मा जाने, उसे यहाँ ही पर्य्याप्त दण्ड मिल गया । सच कहा है:—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैः, त्रिभिःपक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युग्रपुण्यपापानाम्, इहैव फलमश्नुते ॥

माधवरावने शाह आलमको फिर सिंहासनपर बिठाया परन्तु अब वस्तुतः सब अधिकार उनके हाथमें था, क्योंकि अब मुसलमानोंका बल पूर्णतया टूट गया था। ऐसा कोई मुगल या पठान सर्दार न था जो उनसे स्पर्धा कर सकता। सम्राट् और उनके कुटुम्बके व्ययके लिये ९ लाख रु० साल नियत कर दिया।

शाह आलमके साथ साम्राज्यका अन्त हो गया। अभी तक राज्य कम होनेपर भी प्रतिष्ठा बनी हुई थी, पर अब वह भी जाती रही थी। सम्राट् एक शक्तिहीन व्यक्ति थे जिनको किसी राजनैतिक कारणसे शिंदेने वेतन देकर रख छोड़ा था। जिस प्रकार किसी सुन्दर खिलौनेकी रक्षा की जाती है उसी प्रकार शाह आलमकी रक्षा हो रही थी। इतने दिनोंके पीछे माधवरावका पुराना स्वप्न फिर सच्चा हुआ और उनको दिल्लीमें निर्विघ्न असपत्न अधिकार मिला।

यह अध्याय बहुत लम्बा हो गया है, पर इससे मुगल साम्राज्यके अधःपतन और प्रणाशका वृत्तान्त पूरा पूरा मिल जाता है। इसके पीछे जो कुछ शिंदेने किया वह आगे बतलाया जायगा। यहाँ पर हम केवल उनके धैर्यकी प्रशंसा करना चाहते हैं। सं० १८२६ में मराठी सेनाने उत्तरीय भारतमें प्रवेश किया और तबसे ही माधवरावने दिल्ली-साम्राज्यके विषयमें अपने चित्तमें कुछ मन्तव्य स्थिर कर लिये थे। उनके मार्गमें अनेक रुकावटें पड़ीं, कई बार ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी हार्दिक इच्छा अपूर्ण ही रह जायगी, बीचमें बरसोंतक उनको उससे अपनी दृष्टि पूर्णतया फेर लेनी पड़ी, पर उन्होंने अपने लक्ष्यसे मुंह न मोड़ा; अपने प्रयत्नमें तत्पर ही रहे। अन्तमें २० वर्षके धैर्य्यका पुरस्कार उनको मिला और सं० १८४६ में वे दिल्लीसाम्राज्य और मुगल-राजवंशके असंदिग्ध स्वामी बन गये।

हिदुस्तानमें फिर हिन्दुओंको राजनैतिक प्राधान्य प्राप्त हुआ और बाजीराव पेशवाकी आकांक्षा भी एक दृष्टिसे पूरी हुई । यह ठीक है कि अभी मुगल-सम्राट्का नाम चला जाता था, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि कई ऐसे कारण, जो मनुष्यकी प्रबन्धशक्तिके बाहर हैं, न आ पड़ते तो समुचित अवसर पर यह कच्ची भीत भी गिरा न दी जाती और भारतके इस महत्त्व-पूर्ण प्रदेशका शासन प्रकट रूपसे मराठोंके हाथमें आ जाता और भारतीय इतिहासका रूप ही कुछ और हो जाता । अस्तु, जो कुछ हो; माधवरावने अपना कर्तव्य दृढ़तासे पालन किया, इसमें किसीका आक्षेप नहीं हो सकता ।

६—अँगरेजोंसे युद्ध ।

हमने पाँचवें अध्यायमें देखा है कि सं० १८२९ के लगभग मराठे हिन्दुस्थान छोड़कर दक्षिण लौट आये और फिर लगभग बारह वर्ष तक उधर न जा सके। इस अध्यायमें हमको यह देखना है कि वे दक्षिणमें क्या करते रहे। इस अध्यायमें जिन घटनाओंका उल्लेख है वे भी बड़े महत्त्वकी हैं या, यों कहना चाहिये कि, थीं। पाँचवें अध्यायने हमको मुगल-साम्राज्यके नष्ट होनेका क्रम बतलाया। छट्ठा अध्याय मराठा साम्राज्यके अध:पतनका बीज वपन होते दिखलायगा।

इन दोनों साम्राज्योंके नाशके कारणोंपर तुलनात्मक दृष्टि डालना बड़ा ही शिक्षाप्रद है। मुगल-साम्राज्यकी नीव अकबरने डाली। उसका विस्तार बहुत बड़ा था। उसकी रक्षा प्रधानतः भारतनिवासी हिन्दू मुसल्मान ही करते थे। इसका प्रमाण इस बातसे मिलता है कि अकबरके मुख्य मुख्य मंत्री भारतीय ही थे। पद योग्यताके अनुसार दिये जाते थे न कि जाति, वर्ण या सम्प्रदायके। जब तक यह नीति चली गई, साम्राज्यकी अभिवृद्धि होती गई। पर औरङ्गजेबने इसे पलट दिया। हिन्दू मुसल्मानमें भेद किया जाने लगा। अधिकार आध्यात्मिक विचारोंके अनुसार बँटने लगे। परिणाम जो हुआ वह स्पष्ट ही है। साम्राज्यके टुकड़े होने लगे। औरंगजेब

स्वयं योग्य पुरुष थे इस लिये उन्होंने कुछ निबाह लिया, पर उनके वंशजोंको अधिकतर बाहरी सहायकोंकी आवश्यकता पड़ने लगी। मंत्रियोंमें अधिकांश फारस आदिके व्यक्ति होने लगे। ये लोग कुछ भारतीय तो थे ही नहीं कि इनको भारतसे प्रेम होता; ये तो अपना देश छोड़ छोड़ कर धनकी खोजमें निकले थे। इसलिये स्वभावतः ये पहले अपना ही स्वार्थ देखते थे। इसमें सन्देह नहीं कि ये साम्राज्यकी सेवा प्रायः अच्छी करते थे; बात यह थी कि परदेशमें यदि स्वामीको भी प्रसन्न न रखते तो इनको और पूछता ही कौन? पर जहाँ अवसर पाते अपना काम निकालते थे। हैदराबादके निजाम और अवधके नव्वाब-वजीर दोनों इसी प्रकारके विदेशी थे। नजफ खाँ और नजीबुद्दौला भी विदेशीय ही थे। और लुटेरोंके सर्दार अहमद शाह अब्दाली भी अपनेको मुगल-साम्राज्यका मित्र ही कहते थे। ऐसे परदेशी मित्रोंके सहारे राज्य कितने दिन चल सकता था, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही नहीं, इस राज्यके जो टुकड़े होंगे वह भी दुर्बल होंगे। वे किसी प्रबल शक्तिका सामना उस प्रकार नहीं कर सकते जिस प्रकार कि देशी शासक कर सकते हैं। मैं समझता हूँ यही कारण है कि निजाम और लखनऊके बड़े बड़े राज्योंने अँगरेजोंका कुछ भी जमकर सामना न किया।

मराठोंके साम्राज्यमें यह बात न थी। मराठे स्वदेशी थे—उनकी उन्नति अवनति भारतभूमिके साथ ही सम्बद्ध थी, अतः उनकी अवनति दूसरे कारणोंसे हुई। मेरी समझमें उनके अधःपतनका मूल कारण उनका ढीला संगठन था। सब मराठोंके ऊपर शिवाजीके वंशज सताराके महाराज थे, पर उनका अधिकार नाममात्रको ही था। सारा अधिकार उनके अमात्य पेशवाके हाथमें था। पेशवाके नीचे

शिंदे, होल्कर, गायकवाड़, भोंसला, पँवार आदि बड़े बड़े शिलेदार थे। पहले तो ये शिलेदार पूर्णतया पेशवाके सेवक थे। फिर इनको उन प्रान्तोंमें जो इनके द्वारा जीते गये थे, जागीरें दी गईं। ये जागीरें पूनेसे प्रायः दूर थीं, इसलिये इनके शासनमें जागीरदार लोग प्रायः स्वतंत्र थे। दूसरी बात यह थी कि मराठोंका उद्देश्य उस समय यह न था कि सारे देशपर हम शासन करें। वे यह चाहते थे कि सारे देशमें हमारा प्रभाव फैल जाय। इस लिये वे प्रायः चौथ और सरदेशमुखी लेकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। इस शासनपद्धतिके लिये भी यह आवश्यक था कि इन जागीरदारोंको बहुत कुछ स्वातंत्र्य हो—जिसको जिधर अवसर मिले वह उधर ही दबा ले। इस प्रकार धीरे धीरे ये जागीरदार बलवान् और स्वतंत्र होते गये। साधारण जागीरदारोंसे ये स्वतंत्रप्राय नरेश हो गये। ऐसी अवस्थामें ये पेशवाके अधीन तब ही तक रह सकते थे जब तक कि पेशवा स्वयं अत्यन्त योग्य पुरुष हो। फिर इन लोगोंके सामने पेशवाका आदर्श था। जब पेशवाने अवसर पाकर सताराधीशका अधिकार दबा लिया, तो ये लोग पेशवाका अधिकार क्यों न दबा लें? जब तक मुसल्मान प्रबल थे तब तक तो ये लोग मिलकर काम करते रहे पर मुसल्मानोंके दुर्बल हो जाने पर इनका मेल कम होने लगा और सब अलग अलग काम करने लगे।

इस बिगाड़का एक और कारण था। हिन्दुओंका वर्ण-विभेद आजकल अनेक बातोंमें उन्नतिका बाधक होता है। उसका शुद्ध रूप तो रहा नहीं; विकृत रूप प्रायः हानि ही करता है। पेशवा ब्राह्मण थे और अपनेको सबसे उत्तम समझते थे। इस उत्तमताके अभिमानमें वे दूसरोंका अपमान तक कर बैठते थे। यदि ऐसा न होता,

यदि पेशवाने मल्लारि और सूरजमलका समुचित आदर किया होता तो स्यात् पानीपतकी लड़ाईका परिणाम कुछ और ही होता। अपमान सदैव द्वेष-वर्द्धक होता है। पेशवा इन सर्दारोंको छोटा समझते थे, ये पेशवाको भीरु, भिक्षु ब्राह्मण समझते थे। फलतः आपसमें मनमुटाव बढ़ता ही जाता था।

परन्तु मराठे भारतीय थे। उनको भारतभूमिसे प्रेम था और अपनी अधिकांश प्रजाकी भाँति वे भी हिन्दू थे। यही कारण था कि छिन्न भिन्न होनेपर भी उन्होंने अँगरेजोंका प्रबल सामना किया और कई बार कम्पनीकी जड़ एक प्रकारसे हिला दी। यदि इनमें विशेषतः शिंदे और होल्करमें थोड़ासा अधिक सहकारित्व होता तो ये न जाने क्या कर डालते।

पर जो होता उसकी कल्पना करना व्यर्थ है। यहाँ पर हमको जो कुछ हुआ उसके एक अंशका दिग्दर्शन करना है।

हम कह चुके हैं कि तृतीय पेशवाकी मृत्युके पीछे माधवराव पेशवा हुए। इनके काका रघुनाथराव (राघोबा) इनकी पेशवाईके विरुद्ध थे। क्योंकि वे स्वयं पेशवा होना चाहते थे। यदि उनका वश चलता तो वे माधवरावके जीवनकालमें ही कुछ अनिष्ट प्रयत्न करते। पर माधवराव बड़े ही योग्य पुरुष थे। पानीपतके पीछे, जब कि मराठोंका बल और यश दोनों ही घट गया था, राष्ट्रको जीवित रखना साधारण काम न था। पेशवा बननेके समय माधवराव सोलह वर्षके थे, पर उस अवस्थामें ही वे कार्यकुशल और विचारशील थे इसी लिये राघोबाको उनसे दब कर रहना पड़ता था। परन्तु दुर्भाग्यवश उनको क्षयरोग हो गया और १८ नवम्बर १७७२ (सं० १८२९) को उनकी मृत्यु हुई।

इनके पीछे इनके भाई नारायणराव पेशवा हुए। अपने स्वभावके अनुसार राघोबाने इस समय भी गोलमाल करना चाहा, पर नारायण-रावने कुछ कालके लिये उनको कैद कर दिया, परन्तु राघोबा सीधेसे बैठ रहनेवाले व्यक्ति न थे। जब और कुछ युक्ति न चली तो उन्होंने निकृष्ट साधनोंका अवलम्बन किया। जिस प्रासादमें नारायणराव रहते थे उसे 'शनिवारबाड़ा' कहते हैं। राघोबाके उभाड़नेसे समरसिंह नामक एक व्यक्तिके साथ कुछ सिपाही उस प्रासादके गणपति-फाटकसे भीतर घुस आये और जिस कमरेमें नारायणराव बैठे थे उसमें चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपना वेतन माँगना आरम्भ किया। वेतन माँगनेका तो एक बहाना था; इन लोगोंने देखते देखते नारायण-रावके टुकड़े टुकड़े कर दिये। राघोबा उस समय वहीं थे। उनके सामने ही यह लीला हुई, पर उन्होंने इस हत्याकाण्डको रोकनेका कोई प्रयत्न न किया।

अब राघोबाका मार्ग निष्कण्टक हो गया, क्योंकि घरमें और कोई नहीं रह गया था जो पेशवा पदका अधिकारी हो सकता, इसलिये रघुनाथराव ही पूनाकी गद्दीपर बैठे।

परन्तु बहुतसे लोग इनके विरुद्ध थे। इन विरोधियोंमें प्रथम स्थान बालाजी जनार्दन भानुका था। इस व्यक्तिकी अनुपम राजनीतिज्ञता और कार्यकुशलताने बड़े बड़े अँगरेज राजकर्म्मचारियोंको मुग्ध कर दिया था। इनका उपनाम नाना फड़नवीस था और इतिहासमें ये प्रायः इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। सन् १७६३ (सं० १८२०) में नानाको माधवराव पेशवाके यहाँ फड़नवीस (अर्थसचिव) का पद मिला। नारायणरावके अल्प पेशवाई-कालमें इनका प्रभाव बढ़ चला और उनकी मृत्युके पीछे तो ये पेशवाईके प्रधान स्तम्भ हो गये।

नारायणरावके मरते समय उनकी स्त्री गर्भवती थी। नानाने उसको अन्यत्र भेज दिया और स्वयं राघोबाके अधीन काम करना अस्वीकार किया। उनके उदाहरणका अनुकरण कुछ और मंत्रियोंने भी किया। राघोबाने पहले तो इसकी कुछ परवाह न की। उन्होंने मैसूरके सुल्तान हैदरअलीसे लड़ाई छेड़ ली। इसमें पहले तो उनको सफलता हुई, पर धनाभावसे सन्धि करनी पड़ी। इतनेमें यह समाचार आया कि नारायणरावकी स्त्रीको १८ अप्रैल सन् १७७३ (सं० १८३०) को पुत्र हुआ, इस समाचारने राघोबाकी सब आशाओंको मिट्टीमें मिला दिया। नाना आदि सचिवोंने इस सद्योजात बच्चेको द्वितीय माधवरावके नामसे पेशवा मान लिया। राघोबा एक सेना लेकर पूनेकी ओर गये भी, पर उनकी हार हुई और उनको महाराष्ट्र छोड़ कर उत्तर भागना पड़ा।

इन्दौरमें इनसे माधाजी शिंदे और तुकोजी होल्करसे, जो प्रथम माधवरावकी मृत्युका समाचार सुनकर दिल्लीसे पूने आ रहे थे, भेंट हुई। इन सर्दारोंने राघोबाको सहायता देनेका वचन दिया। साथ ही माधाजीने इनको बम्बईके अँगरेजोंसे सहायता माँगनेका भी परामर्श दिया।

उस समय, अँगरेजोंकी बम्बई, मद्रास और कलकत्तेमें तीन प्रधान कोठियाँ थीं। इन तीनोंके व्यवस्थापकोंको गवर्नर कहते थे। पहले तो तीनों स्वतंत्र थे, परन्तु सन् १७७४ (सं० १८३१) में एक नया नियम बना, जिससे बङ्गालके गवर्नर प्रधान कर दिये गये और उनको गवर्नर-जनरलकी उपाधि दी गई। उनकी सहायताके लिये एक कौंसिल नियत की गई और उसकी सम्मतिके अनुसार चलना उनके लिये बाध्य कर दिया गया। वारन हेस्टिंग्ज पहले गवर्नर-जनरल हुए। उनकी कौंसिलके पहिले सदस्य बारवेल, फ्रांसिस, क्लेवरिङ्ग

और मॉनसन थे। इनमें प्रथम तो हेस्टिंग्जके मित्र थे; शेष तीनों, विशेषत: फ्रांसिस, उनके कट्टर विरोधी थे।

राघोबाने बम्बईके गवर्नरसे साहाय्य माँगा। इन लोगोंकी बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि बसीनका बन्दर और सालसेटका टापू हमको मिल जाय। राघोबाने इन दोनों स्थानों और सहायक सेनाके खर्चका वचन दिया। बस बम्बईके गवर्नरने राघोबाको १५०० सिपाही दे दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने उन दोनों जगहोंमें अपना अधिकार भी कर लिया। ऊपर हम कह चुके हैं कि नये नियमके अनुसार वे कलकत्तेके गवर्नरके अधीन थे पर उन्होंने बिना गवर्नर-जनरलकी सम्मति लिये ही यह सब कर डाला। इसका जो फल हुआ वह आगे देख पड़ेगा।

इन बातोंका समाचार पूना पहुँचा। पूना-दरबारने पहले इन्दौरकी अहल्याबाईको मिलाया। वे स्वयं विधवा थीं और उनको द्वितीय माधवरावकी विधवा माता पर दया आगई। उनकी आज्ञासे तुकोजी होल्करने राघोबाका साथ छोड़ दिया। तुकोजीके अलग होते ही माधाजीने भी राघोबाका पक्ष परित्याग कर दिया। अब अकेले राघोबा रह गये। उनको पूनाकी सेनाने युद्धमें हराया और उनको प्राण बचा कर अपने अँगरेज संरक्षकोंके पास सूरत भागना पड़ा।

यहाँ उनसे और बम्बईके गवर्नरसे नया इकरारनामा हुआ। इस बार राघोबाने और भूमि कम्पनीको दी और इसके बदले कम्पनीने पहलेसे दूनी सेना उनको दी। इसके नायक कर्नेल कीटिंग नियत किये गये। इस बार राघोबा और बम्बईके गवर्नर दोनोंका उत्साह बढ़ा हुआ था. उनको विश्वास हुआ कि उनका मनोरथ अवश्यमेव

सिद्ध हो जायगा। इस लिये यह सेना पूना भेजी गई और उसको आज्ञा दी गई कि वह राघोबाको बलात् पेशवा बनावे।

इधर पूना-दरबारने भी युद्धकी तय्यारी की और आरस या ऐर-सके मैदानमें १८ मई १७७५ (सं० १८३२) को दोनों सेनाओंमें लड़ाई हुई। यह स्थान खंभातकी खाड़ीके पास है। इस लड़ाईका कथन करते हुए कीन कहते हैं " Keating fought a very severe action ... and only defeated the enemy at last by his own intrepidity and the good behaviour of his small British Contingent " " कीटिङ्गको कठिन लड़ाई लड़नी पड़ी आर अन्तमें उन्होंने अपने थोड़ेसे अँगरेज सिपाहियोंके सद्व्यव-हार और निर्भयतासे शत्रुको पराजित किया।" इससे यह भी ध्वनि निकलती है कि कीटिङ्गके देशी सिपाही अच्छी तरह नहीं लड़े। कीन बहुतसे अवसरोंपर ऐतिहासिक घटनाओंको ठीक ठीक लिखते हैं पर इस लड़ाईका वृत्तान्त लिखते समय उन्होंने किसी कारणसे भूल की है। लायल कहते हैं " The Bombay troops were obliged to fall back in disorder " " बम्बईके सिपाहियोंको घबराहटके साथ पीछे हटना पड़ा।" इसको जीत नहीं कह सकते। कीन कहते हैं कि १० मईको भाऊपीरमें कीटिङ्गने मराठोंको फिर हराया। लायल इस लड़ाईका नाम नहीं लेते। लड़ाई हुई निःसन्देह होगी पर मेरी समझमें उसका महत्त्व बहुत ही कम रहा होगा।

यह हम कह चुके हैं कि बंगालके गवर्नर अँगरेजोंमें सर्व्वोपरि थे। जब बम्बईके गवर्नरकी इस कार्य्यवाहीका समाचार कलकत्ते पहुँचा तो बंगाल गवर्नमेंण्ट बहुत असन्तुष्ट हुई। उसने इन कामोंको ' Impolitic, dangerous, unauthorized and unjust '

(अनैतिक, हानिकर, अनधिकारी और अन्यायपर) बतलाया। उन्होंने यह भी कहा कि बंबईवालोंने अपने ऊपर व्यर्थ महाराष्ट्र-साम्राज्यको जीतनेका भार ले लिया है और वह भी एक ऐसे व्यक्तिके लिये जो इस कार्यमें कुछ भी उपयोगी सहायता नहीं दे सकता। (' The charge of conquering the whole Maratha empire for man who appeared incapable of affording effectual assistance in the undertaking ') उन्होंने यह आज्ञा भेजी कि अँगरेजी सेना मराठोंके विरुद्ध न भेजी जायँ पर यह आज्ञा देरमें पहुँची; तब तक आरासकी लड़ाईका समाचार पहुँचा। इसने विचारोंको कुछ परिवर्तित किया। लड़ाई चाहे न्याय्य हो या अन्याय्य, अँगरेजी सेनाकी हार हो चुकी थी और अब पीछे हटनेमें अप्रतिष्ठा होगी। इस लिये हेस्टिंग्जकी सम्मति थी कि अब युद्ध करना ही उचित है, पर उनके कौंसिलके अधिकांश सदस्योंके वैमत्यने उनकी बात न चलने दी। इस लिये कर्नल अप्टन नामके एक व्यक्ति पूना-दर्बारसे, सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिये भेजे गये। कीन लिखते हैं कि वे ' defeated Regency ' से सन्धि करनेके लिये भेजे गये। यह उनकी दूसरी भूल है। मराठे ' defeated ' या पराजित नहीं थे। लायल कहते हैं " The Marathas were at this period far too strong and too well-united to be shaken or over-awed by such forces as the English could despatch against them," " मराठे इस समय इतने प्रबल और संयुक्त थे कि अँगरेजोंकी भेजी हुई सेनाएँ उन्हें हिला या डरा नहीं सकती थीं।"

अप्टनके दौत्यसे कोई लाभ न हुआ। मराठे चाहते थे कि सालसेट और बसीन लौटा दिये जायँ और राघोबा मराठोंके हाथमें दे दिये जायँ, पर अँगरेजोंको ये शर्तें स्वीकार न थीं। बहुत वाद-

विवादके पीछे १ मार्च १७७६ (सं० १८३३) को 'पुरन्धर-संधि' नामकी एक संधि हुई। इसके अनुसार सालसेट अँगरेजोंके पास रहा, परन्तु राघोबाकी सेना तोड़ दी गई और उसका पक्ष छोड़ दिया गया। परन्तु इसी अवसर पर विलायतसे कम्पनीके डाइरेक्टरोंकी यह आज्ञा आई कि राघोबासे जो पहली संधि हुई थी उसीका अनुसरण किया जाय। यह बात कलकत्ता गवर्नमेण्टको तो बुरी लगी, पर राघोबा और बम्बईके गवर्नर इससे बहुत प्रसन्न हुए। कई बातोंको सोचकर वारन हेस्टिंग्जने (जो पहलेहीसे युद्धके पक्षमें थे) भी बम्बईके गवर्नरका पक्ष लिया और बङ्गालसे एक सेना पूनेकी ओर भेजी गई। बम्बई गवर्नमेण्टने भी एक सेना सुसज्जित की। इसी समय सुखराम बापू नामक एक मंत्रीने राघोबाका पक्ष ले लिया और वे बम्बईसे पत्र-व्यवहार करने लगे। बम्बई गवर्न्मेण्टने कर्नल लेस्लीके साथ एक सेना भेजी और नाना फड़नवीसको पद त्याग करना पड़ा। तुकोजी होल्करने भी न जाने क्या समझकर सुखराम बापूका साथ दिया। परन्तु माधाजीने बिगड़ती बात सँभाल ली। वे स्वयं पुरन्धर आये, जहाँ नाना फड़नवीस पहले ही पहुँच गये थे और ८ जून १७७८ (सं० १८३५) को सुखराम बापू (मोरोबा) को हटाकर नानाको फिर साधिकार किया।

इधर अँगरेजोंके लिये भी वह बड़ा चिन्ताका समय था। अमेरिकाके अँगरेजी उपनिवेशोंने, जिन्हें आजकल अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्र कहते हैं, स्वातंत्र्यका झण्डा उठाया था और फ्रांस (और कदाचित् स्पेन) के भी उनसे मिल जानेकी आशङ्का थी। यह आशङ्का कुछ कालमें सत्य ही निकली। दक्षिण भारतमें हैदरअलीसे झगड़ा चल रहा था। बात यह थी कि मैसूर राज्यमें माहीका बन्दर फ्रांसवालोंके हाथमें

था। अँगरेज उसे लेना चाहते थे, पर हैदरने उन्हें ऐसा करनेसे मना किया। उन्होंने न माना और हैदरके राज्यमेंसे होकर एक अँगरेजी सेना निकल गई। इस बातने सुल्तानको स्वभावतः रुष्ट कर दिया। इन सब आपत्तियोंके समयमें अँगरेजोंके पास अच्छे शासक भी न थे। लायल कहते हैं "The two minor Presidencies of Bombay and Madras were governed by rash incompetent persons who were exceedingly jealous of the Governor-general's superior authority, who disregarded his advice and thwarted his policy." "बंबई और मद्रासके प्रान्तों (इस लिए कि ये गवर्नर-जनरलके अधीन थे) में ऐसे प्रमत्त और असमर्थ व्यक्तियोंके हाथमें शासन था जो गवर्नर-जनरलके श्रेष्ठ-तर अधिकारको बुरा मानते थे, उनके आदेशों और परामर्शोंकी अवहेलना करते थे और उनकी नीतिमें विघ्न डालते थे।" ऐसे समयमें हेस्टिंग्जका ही काम था जो अँगरेजोंकी प्रतिष्ठा बनी रह गई। इसी समय एक फ्रांसीसी पूना आया। उसका नाम सेण्ट ल्यूबिन था। उसने अपनेको फ्रेञ्च गवर्न्मेंण्टका राजदूत बताया। जहाँतक समझ पड़ता है नाना फड़नवीसने उसकी बातोंपर पूरा विश्वास तो नहीं किया पर दिखलानेके लिये उससे बातचीत निःसन्देह आरम्भ कर दी। जो हो, ल्यूबिन थोड़े दिनोंमें पूनेसे बिदा-कर दिया गया पर उसका आना ही अँगरेजोंको घबरानेके लिये पर्य्याप्त था। मैं समझता हूँ, इसी उद्देश्यसे नानाने उसका सम्मान भी किया था।

कलकत्तेकी सेनाके आनेमें तो देर थी। पहले बम्बईकी सेनाने ही पूनेपर चढ़ाई की। इस लड़ाईका परिणाम अँगरेजोंके लिये बहुत ही बुरा हुआ। इस सेनाके नायकका नाम एगर्टन था और उनकी सहा-

यताके लिये जनरल कार्नेक भी साथ थे। मराठी सेनाके अध्यक्ष माधाजी थे। ९ जनवरी १७७९ (सं० १८३६) को यह सेना पूनेसे दसकोस तलेगाँव पहुँची। वहाँ पहुँचकर कीनके शब्दोंमें "The commanding officer fell sick; the Military Member of council lost his head; the column was hemmed in and cowed into retreat; officers and men became demoralised; the stores were burned, the guns thrown into a pond" सेनानायक रुग्ण हो गये, कौंसिलके सदस्य (जनरल कार्नेक) घबरा गये; सेना घेर ली गई और डराकर पीछे हटा दी गई; अफसर और सिपाही घबरा गये; सामग्री जला दी गई; तोपें एक तालाबमें डाल दी गई। यहाँसे पीछे हटकर सेना बड़गाँव आई। वहाँ उन लोगोंको शिंदेसे हार माननी पड़ी। कुछ शर्तोंको मान लेने पर शिंदेने इन लोगोंको छोड़ दिया। केवल कुछ व्यक्तियोंको जमानतकी भाँति रोक लिया। प्रधान शर्तें ये थीं:—बङ्गालकी सेनाका आगे बढ़ना रोक दिया जाय; भरोचका जिला मराठोंको दे दिया जाय और माधाजीके अनुयायियोंमें ४१,००० रुपया बाँट दिया जाय। राघोबा स्वयं माधाजीकी शरणमें आ गये। पर न जाने क्या समझकर शिंदेने उन्हें भाग जानेको अवकाश दे दिया। इस युद्धके विषयमें लायल कहते हैं:—"इसके नेताओंने भारी भूल की और व लज्जाजनक रीतिसे हटे; राघोबाको प्रवासमें भागना पड़ा और मराठोंके हाथ न्याय्य और स्थायी क्रोधके सिवाय और कुछ न आया।"

बङ्गालकी सेनाके भाग्य इससे अच्छे थे। उसीने अँगरेजी सेना और गवर्नमेण्टका नाम रख लिया। परन्तु उसके कृत्योंका वर्णन करनेके पहले इतना और कहना है कि इस अवसर पर हेस्टिंग्जने मराठोंमें फूट उत्पन्न करनेका भी प्रयत्न किया, पर सफलता न हुई।

लायल कहते हैं "he was outwitted by those adepts in subtle state-craft" "उसे कूटनीतिके उन आचार्य्योंसे पराजित होना पड़ा।" इस बङ्गालकी सेनाके नायक कर्नल गॉडर्ड थे। इनको रोकनेके लिये पूनेसे २०,००० सवार भेजे गये थे परन्तु ये उनसे बच गये। लड़नेके पहले इन्होंने सन्धिका प्रस्ताव उपस्थित किया। इतना ही नहीं, ये शिन्देसे अलग सन्धि करना चाहते थे। परन्तु सन्धिकी शर्तें निर्धारित न हो सकीं। नाना कहते थे कि राघोबा दे दिये जायँ और गॉडर्ड इसको शरणागतत्याग और निन्द्य कर्म समझते थे।

१५ फर्वरी १७८० (सं० १८३७) को अँगरेजी सेनाने अहमदाबाद लिया। समाचार पाते ही शिंदे और होल्कर गुजरातकी ओर बढ़े और ऐसा प्रतीत हुआ कि ये अँगरेजी सेनासे युद्ध करेंगे। परन्तु कोई अच्छी लड़ाई न हुई।

यह अवस्था लगभग पाँच महीने तक रही। अगस्तके महीनेमें एक ऐसी घटना हुई जिसने लड़ाईके शीघ्र समाप्त होनेमें बड़ी सहायता दी। इस लिये इसका वृत्तान्त किञ्चिद्विस्तारसे देना उचित प्रतीत होता है। ग्वालियरका किला प्राचीन समयसे ही भारतके इतिहासमें प्रसिद्ध है। कमसे कम जिस पहाड़पर वह बना है बहुत ही प्रसिद्ध है। पहले उसे गोपाचल कहते थे। यह किला बहुत ही मजबूत गिना जाता था। एक तो पहाड़ीकी बनावट ऐसी है कि उस पर चढ़कर किलेमें घुसना सुकर नहीं है, दूसरे किलेका निर्म्माण भी बड़ी योग्यतासे किया गया है। मुगलोंके समयमें यह राजकीय बन्दीगृह था। राजवंशके पुरुष या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिन पर सम्राट्को क्रोध होता था, उसमें बन्द किये जाते थे।

सम्राट् शहाजहाँ अपने सुपुत्र औरङ्गजेब द्वारा इसीमें बन्द किये गये थे और इसीमें उनकी मृत्यु हुई थी। मुगल राज्यके टूटने पर किला गोहदके जाट राणाके हाथमें गया। यही राणा वर्तमान् धौलपुर राज्यके महाराज राणाके पूर्वज थे। माधाजीने गोहदके राणासे किला छीन लिया था और उसके संरक्षणका प्रबन्ध भी यथाशक्य सुदृढ़ कर लिया था। परन्तु इस युद्धके समय राणाको अवसर मिला। वे मेजर पॉपहमसे जा मिले। इन मेजर साहबको हेस्टिंग्जने इसी लिये भेजा था कि वे राजपूतों और जाटोंको शिंदेके विरुद्ध उभाड़ें। इन लोगोंने सोचा कि शिंदे अपनी मुख्य सेना लेकर इस समय दक्षिणमें हैं। इस लिये ग्वालियर पर आक्रमण करना चाहिये। यदि शिंदे ग्वालियरकी ओर सहायतार्थ आये तो दक्षिणमें गॉडर्डको सुभीता हो जायगा; यदि वे न आये, तो ग्वालियर अपने हाथ आ जायगा और पीछेसे उन पर दबाव डाला जा सकेगा।

इसी विचारसे पॉपहम किलेके पास आये। किलेमें घुसनेका काम ब्रूस नामके एक आफिसरको सौंपा गया। ब्रूसने कुछ चोरोंसे, जो रास्ता भली भाँति जानते थे, सहायता ली। अँधेरी रातमें अपने पाँवमें कपड़ेके गद्दे बाँध बाँध कर ये लोग दीवारके नीचे जा कर खड़े हो गये। जब ऊपर पहरेवाले भी कुछ शान्त हुए तो ये लोग नसैनियोंद्वारा ऊपर चढ़ गये। पहले उस स्थानके पहरेवाले चुपकेसे दबा लिये गये, फिर इसी प्रकार सारा किला हाथमें आ गया। कहते हैं कि ब्रूसको एक सिपाहीकी भी क्षति न हुई। किलेके संरक्षकोंकी चौकसीके विषयमें क्या कहा जाय, पर इसमें सन्देह नहीं कि ब्रूसने बड़े साहसका काम किया। यदि उनका शत्रु सच मुच सतर्क होता तो उनका प्राण कदापि न बचता।

इस समाचारने सचमुच वही फल दिया जो अंगरेजोंने सोचा था। माधवरावको ग्वालियरकी चिन्ता लगी। वे उस ओर आये। पॉपहमके स्थानमें अब मेजर कैमॅक सेनाध्यक्ष थे। ये लड़ाई बचाना चाहते थे, पर ब्रूसने, जिन्होंने ग्वालियरका किला लिया था, माधवरावकी सेनापर रातमें छापा मारा, जिसमें मराठोंकी बहुत कुछ क्षति हुई।

इसके पीछे कोई लड़ाई न हुई। दोनों दल सन्धि करना चाहते थे। सच तो यह है कि मराठोंसे अधिक अँगरेजोंको सन्धिकी इच्छा थी, क्योंकि उनके शत्रुओंकी संख्या बढ़ती जा रही थी। सन् १७८० (सं० १८३७) में हैदरसे लड़ाई छिड़ते ही उन्होंने बरारके राजा द्वारा संधिका प्रस्ताव किया, पर कुछ स्थिर न हुआ। फिर माधाजीसे संधि करानेके लिये कहा गया, पर उन्होंने बहुत देरमें उत्तर दिया और जो उत्तर दिया भी वह सन्तोषजनक नहीं था। इस युद्धके विषयमें लायल कहते हैं " a war that was neither honourable to the English name nor advantageous to their interests" (एक युद्ध जिससे न तो अँगरेजोंके नामकी प्रतिष्ठा बढ़ी, न उनको कोई लाभ हुआ।) आगे चलकर वे कहते हैं कि हेस्टिंग्जको इस लड़ाईने बड़े आर्थिक कष्टमें डाल दिया। अनेक युक्तियाँ की गईं पर कोष रिक्त हो गया। इधर मराठे भी संधि ही चाहते थे। अँगरेजोंने राघोबाका पक्ष छोड़ ही दिया था। अब युद्धसे कोई विशेष लाभ नहीं था। बात यह थी कि इधर जो लड़ाई हुई थी वह दोनों राष्ट्रोंमें नहीं प्रत्युत हेस्टिंग्ज और माधवरावमें थी। जैसा कि कीन कहते हैं:—" The war, in fact, was becoming a duel between Sindhia & Warren Hastings; and for some twelve months the ablest men in India faced one

another in earnest conflict" वस्तुतः यह शिंदे और वारन हेस्टिंग्जमें आपसकी लड़ाई होती जाती थी और साल भर तक ये दोनों व्यक्ति, जो उस समय भारतमें योग्यतामें अद्वितीय थे, दिल खोल कर लड़ते रहे।

अब इनका भी मन भर गया था। कर्नल म्योरके द्वारा फिर सन्धिकी बातचीत होने लगी। इसी बीचमें शिंदेने ग्वालियरका किला फिर गोहदके राणासे छीन लिया, पर अँगरेज चुप रहे। इतना ही नहीं, हेस्टिंग्जने माधवरावको ही अपने और पूना-सर्कारके बीचमें मध्यस्थ बनाया। इन बातोंका परिणाम यह हुआ कि १७ मई सन १७८२ (सं० १८३९) को सलबाईकी सन्धि हुई। इस पर पेशवाके प्रतिनिधि बनकर माधवरावने ही हस्ताक्षर किया। दिसम्बरमें नानाने भी हस्ताक्षर कर दिये और महाराष्ट्रकी मुहर लगकर सन्धि पुष्ट हो गई।

इस सन्धिकी प्रधान धाराएँ ये थीं:—

(१) अँगरेजोंके हाथमें शिन्दे राज्यका जो कुछ अंश आ गया था वह लौटा दिया गया।

(२) अँगरेजोंने राघोबाका पक्ष छोड़ दिया। राघोबाकी पेंशन कर दी गई। बसीन पेशवा-सर्कारको लौटा दिया गया।

(३) मराठों और अँगरेजोंमें बे-रुकावट व्यापार हुआ करे। इसके अतिरिक्त एक अलग शर्तनामेके द्वारा भरोचका जिला माधवरावको मिल गया।

इस सन्धिने भारतके इतिहासपर बहुत कुछ प्रभाव डाला। मराठोंको या यों कहना चाहिये कि माधवरावको, सारे उत्तर और पश्चिम भारतमें मनमाना करनेका अधिकार मिल गया। अभीतक यह खटका था कि

स्यात् अँगरेज किसी प्रकारका विरोध करें पर अब वह शङ्का जाती रही। कमसे कम हेस्टिंग्जके शासनकालमें ऐसा नहीं हो सकता था, क्योंकि अब माधवराव और हेस्टिंग्जमें बड़ी मैत्री हो गई थी। चाहे मराठोंकी कोई नीति कम्पनीको अरुचिकर भी प्रतीत हो पर उसके खुलकर विरोध किये जानेकी सम्भावना नहीं थी, इसका प्रमाण हम पाँचवें अध्यायमें दे चुके हैं। राजपूतानेके राज्यों और दिल्लीके साम्राज्यके साथ माधवरावने जो कुछ चाहा किया, पर अँगरेजोंने कभी उनका विरोध न किया; इतना ही नहीं, हेस्टिंग्जने युवराजको उनके शरणमें जानेका परामर्श दिया। यदि ऐसा न होता तो माधवरावको दिल्लीमें अधिकार जमानेमें कुछ कठिनाइयाँ झेलनी पड़तीं।

महाराष्ट्रमें अब माधवरावका स्थान प्रायः सर्वोच्च महत्त्वका हो गया। पेशवा तो अभी बालक थे; केवल नाना फड़नवीस ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो माधवरावसे स्पर्धा कर सकते थे। इस लडाईमें शिंदेने अपनी असाधारण योग्यताका परिचय दिया था। लोगोंने उनकी सैनिक और राजनैतिक—दोनों प्रकारकी पटुता देखी थी। स्वयं शत्रुने उनकी प्रतिभाका लोहा माना था। इसी प्रतिभाके कारण उन्होंने हेस्टिंग्जको अपना मित्र बना लिया था। नाना भी एक कारणसे इनसे दबते थे। राघोबा अभी जीवित थे; यदि माधवराव किसी बातसे रुष्ट होकर फिर उनका पक्ष ले लें तो बड़ी आपत्ति होगी, इस लिये सभी माधवरावकी बात मानते थे। जैसा कि कीन कहते हैं " In the great competitive examination which had been going on for many years, Sindhia had come out first and taken all the prizes" "कई बर्सोंतक जो परीक्षा हो रही थी, उसमें शिन्दे प्रथम आये और सब पुरस्कार ले गये।"

इधर अँगरेजोंके लिये भी शिंदेका प्राधान्य लाभदायक था। उस समय उनके लिये यही बात उपयोगी थी कि देशमें कोई एक शासक हो जो प्रबन्ध रख सके। अनेक छोटे छोटे और दुर्बल शासकोंके होनेमें आपत्ति यह थी कि वे सदैव आपसमें लड़ते रहते और उनके कारण अँगरेजोंको भी सन्नद्ध रहना पड़ता। "The Empire had fallen: the British had taken such portions of it as were required for their commercial purposes: it was to their interest that the rest of the peninsula should be under the rule most conducive to peace and order; and that rule was, evidently, Sindhia's." साम्राज्य (मुगल) का पतन हो गया था; अँगरेजोंने उसका वह भाग, जो उनके व्यापारके लिये उपयोगी था, ले लिया था। उनका लाभ इसीमें था कि प्रायद्वीप (भारत) का शेषांश ऐसे शासनमें हो जो शान्ति और नियमका प्रवर्तक हो; और यह शासन शिंदेका ही शासन था।" इस सम्बन्धमें एक बात और उल्लेख्य है। सन्धि करते समय शिंदेके साथ जो पृथक् शर्तनामा हुआ था उसका कथन ऊपर हो चुका है। हेस्टिंग्जने अपनी समझमें यह बड़ी ही बुद्धिमत्ताका काम किया था। वे समझते थे कि पृथक् शर्तनामा करके मैंने मराठोंका बल तोड़ दिया। जब शिंदेसे पृथक् शर्तनामा हुआ तो वे स्वतंत्र नरेश हुए। अब वे पेशवा और महाराष्ट्र संघसे अलग हो गये। भविष्यमें वे और मराठोंसे अलग रहेंगे। उन्होंने स्वयं हाउस आव लार्ड्सके सामने कहा "a third (Sindhia) I drew off by diversion and negotiation and employed him as the instrument of peace" "शिंदेको मैंने पत्रव्यवहार द्वारा और बातोंमें लगाकर अलग कर

दिया और उनको शान्तिका साधन बनाया ।" यह उनकी भूल थी । माधवराव इतने भोले न थे कि हेस्टिंग्जकी इस चालमें फँस जाते । उन्होंने देखा कि अँगरेजोंको ऐसा विश्वास दिला देनेसे अपना लाभ होता है । इसी लिये वे भी इस बातको जबतक हो सकता था निबाहे चलते थे । पर उनका यह भूलकर भी विचार न था कि मैं महाराष्ट्र संघसे पृथक् और स्वतंत्र होकर रहूँ । वे अपनी वृद्धि निःसन्देह चाहते थे पर साथ ही संघकी वृद्धि और उसके संयुक्त सङ्गठन पर भी उनकी दृष्टि सदैव रहती थी । इसके कुछ प्रमाण आगे चलकर दिये जायँगे, पर एक प्रमाण पाँचवे अध्यायमें ही दिया जा चुका है । जब शाह आलम दिल्लीकी गद्दीपर बैठाये गये तो शिंदेने पेशवाको वकील-उल्मुल्ककी उपाधि दिलवाई । स्वयं कोई स्वतन्त्र उपाधि न लेकर वे पेशवाके नायबकी उपाधिसे ही सन्तुष्ट रहे । इतना ही नहीं सारे भारतमें लोग उन्हें आदरके साथ महाराजा कहते थे पर ये अपनेको अपने पिताकी पैत्रिक उपाधिसे 'माधाजी पटेल' ही कहा करते थे । अतः इस नैतिक चालमें हेस्टिंग्जकी हार ही रही ।

हम ऊपर कह आये हैं कि हेस्टिंग्ज और माधवरावमें युद्धके पीछे मैत्री हो गई, इसका सबसे बडा प्रमाण है कि जब मैसूरके टीपू सुल्तानसे १७८३ (सं० १८४०) में अँगरेजोंसे मँगलोरकी सन्धि हुई तो हेस्टिंग्जने शिन्देको पत्रद्वारा पूरा पूरा विवरण लिख भेजा । सन्धि अँगरेजोंके लिये बहुत सन्तोष-जनक नहीं थी और मद्रास गवर्नमेंटने अनावश्यक जल्दी करके उसे स्वीकार कर लिया था । हेस्टिंग्जने माधवरावको वे सब कारण लिख भेजे जिनसे कि स्वयं उन्होंने इस अपमानकारी संधिमें बाधा नहीं डाली । इसके अतिरिक्त इन दोनों

योग्य शासकोंमें बराबर ही पत्रव्यवहार होता रहा। कमसे कम हेस्टिं-ग्जके शासनकालमें शिंदेने कभी ऐसा कोई काम नहीं किया जो कम्पनीके लिये हानिकारक हो और हेस्टिंग्ज तो सदैव उनके लाभसा-धनमें ही तत्पर रहते थे। कोई कोई ग्रन्थकार इस मैत्रीको विचित्र समझते हैं। उनकी समझमें ही नहीं आता कि ये दोनों व्यक्ति इतनी सहकारिता क्यों दिखलाते थे। पर यह बड़ी ही सरल बात है। यह कोई बच्चोंकी मैत्री नहीं थी। दोनों ही योग्य शासक थे। दोनों ही अपने अपने राष्ट्रका कल्याण चाहते थे; दोनों ही यह समझते थे कि इस कल्याण और अभिवृद्धिकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब देशमें चारों ओर छोटे छोटे उत्पात न खड़े हों और दोनों ही एक दूसरेकी योग्यतासे परिचित थे। माधवराव देख चुके थे कि इतनी आपत्ति-योंसे घिरकर भी हेस्टिंग्जने किस भाँति कम्पनीकी प्रतिष्ठा निबाही थी और कीनके शब्दोंमें, He (Hastings) recognised the real master of the country powers—in the self-restrained and polite soldier of the Marathas वे अर्थात् हेस्टिंग्ज जानते थे कि समस्त देशी राष्ट्रोंके, स्वामी ये ही सुशील और संयमी मराठा योद्धा (माधवराव) हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं इस अध्यायकी घटनाओंने माधवरावको भारतमें एक अत्युच्च स्थान दे दिया। परन्तु अभीतक उनका कार्य्यक्षेत्र दक्षिणमें ही सङ्कीर्ण था। कई वर्ष पहिले उन्होंने हिन्दुस्तानमें कुछ काम आरम्भ किया था, परन्तु पेशवा माधवरावकी मृत्युने उसमें विघ्न डाल दिया था। कई वर्षके अवकाशमें सब काम चौपट हो गया था और हिन्दुस्तान मराठोंसे एक प्रकारसे शून्य हो गया था। पर माधवराव अपने उद्देश्यसे विमुख होनेवाले पुरुष न

थे । दक्षिणी झगड़ोंके शान्त होते ही वे उत्तरकी ओर मुड़े । वहाँ जाकर उन्होंने क्या क्या किया—किस प्रकार मुसलमानोंके सङ्गठन-को तोड़ा, किस प्रकार गुलाम कादिरको दण्ड देकर शाह आलमका सकुटुम्ब छुटकारा किया, किस प्रकार साम्राज्यमें उनको और उनके द्वारा हिन्दुओंको प्राधान्य मिला, अर्थात् किस प्रकार उन्होंने अपने स्वप्नको जाग्रतमें प्रत्यक्ष किया—यह सब पञ्चम अध्यायमें लिखा जा चुका है ।

७—माधवरावकी सेना।

राष्ट्रकी सत्ता सेनापर ही निर्भर है। यह सत्य है कि 'सत्यान्नास्ति परो बलम्' और 'यतो धर्म्मस्ततो जयः' परन्तु सत्य और धर्म्मकी स्थिति भी सैनिक बलके द्वारा ही निरापद रहती है। जिस राष्ट्रके पास उपयुक्त और पर्य्याप्त सैनिक बल नहीं होता वह न तो अपना संरक्षण कर सकता है और न आवश्यकता पड़नेपर परराष्ट्रोंपर आक्रमण ही कर सकता है। सैनिक बलका उपयुक्त और पर्याप्त होना परमावश्यक है। यदि इन दोनों बातोंमेंसे किसी एकमें भी कमी हो तो राष्ट्रकी अवस्था शङ्कास्पद होती है। अभी इसी युगके उदाहरण लीजिये। बेल्जियमके पास जो कुछ सेना थी वह उपयुक्त थी। सिपाहियोंके पास शस्त्र भी ठीक थे। लीज और नामूरके किले भी बड़े दृढ़-निर्मित थे; परन्तु सेना अत्यन्त थोड़ी थी। वह जर्मनीका एक धक्का भी न सह सकी। इसका उल्टा उदाहरण रूसका है। रूसके पास मनुष्योंकी कमी न थी, पर सारी सामग्री अनुपयुक्त, सिपाहियोंके पास बन्दूकें या तो थीं ही नहीं, या थीं तो अत्यन्त पुरानी चालकीं; किले सब पुराने ढङ्गके, तोप और गोले निरर्थक, इस लिये उसे भी जर्मनीके सामने दबना पड़ा।

जो सामग्री किसी समय उपयोगी होती है वही देश-काल-पात्रके अनुसार अनुपयोगी हो जाती है। राजा पुरुकी चतुरङ्ग सेना—पदाति सवार, रथ और हाथी—तद्वत्सज्जित भारतीय सेनाओंका सामना करनेके लिये उपयुक्त भी थीं और पर्याप्त भी, पर सिकन्दरकी सेनाके सामने अनुपयुक्त ठहरी। मुगलोंकी सेनाएँ, जो बड़े बड़े राज्योंके दमन करनेके लिये सशक्त थीं शिवाजीके सामग्री-हीन सवारोंके सामने असमर्थ निकलीं। अतः योग्य शासक वही है जो सब बातोंपर निरन्तर ध्यान देता रहे, सदैव सतर्क रहे और जिस समय जैसी आवश्यकता हो अपनी सेनाको भी वैसा ही रूप देता रहे। परिवर्तनशील न होना भी अवनतिका एक प्रबल प्रमाण है।

माधवरावके योग्य शासक होनेमें तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। वे प्रत्येक काम योग्यताके साथ करते थे, इस लिये सेना-सुधारकी ओर उनका ध्यान जाना स्वभाविक था। इसकी बड़ी आवश्यकता थी। माधवराव देख चुके थे कि कई लड़ाइयोंमें अँगरेजी सेनाओंके द्वारा देशी सेनाएँ परास्त हो चुकी थीं। इसके दो कारण थे। जैसा कि कर्नल मैलेसनने दिखाया है—कई अवसरोंपर देशी नेता अँगरेजोंसे मिल गये, यह दुर्भाग्य है पर सब जगह केवल ऐसा ही नहीं हुआ है। कई स्थलोंमें बिना किसीकी बेईमानीके भी अँगरेजी सेनाओंकी जीत हुई थी। इन सेनाओंमें केवल अँगरेज ही नहीं थे। अधिकांश भारतीय ही होते थे। वही भारतीय सिपाही जो देशी सेनाओंमें रह कर अयोग्य पाये जाते थे अँगरेजी सेनामें जाकर ठीक हो जाते थे। बात यह थी कि अँगरेजी सेनाकी कवायद बड़ी उत्तम थी। कवायद और नियम ऐसी वस्तु है कि इसके आश्रयसे थोड़ेसे मनुष्य अपनेसे दसगुनी संख्याको दबा सकते हैं। उस समयकी

मराठी सेना पूर्णतया अनियमित रूपसे रहती थी। उसके साथ बहुतसे लुटेरे रहते थे। इनका उद्देश्य केवल लूट मार था। ऐसे सिपाही कभी ईमानदार नहीं हो सकते। ये जहाँ तक हो सकता था अपनी जान बचानेकी ताकमें रहते थे। इनको कुछ नियत वेतन तो मिलता था ही नहीं कि अपने स्वामीकी जमकर सेवा करें—जहाँ किसी पक्षकी जीत होते देखी वहाँ उसका साथ दिया, नहीं तो अलग हो गये। इनमें जो मराठे थे वे तो पेशवाको एक प्रकारसे अपना स्वामी मानते भी थे, जो मराठे नहीं थे, वे तो और भी अस्थिर सेवक थे। इन लुटेरे सिपाहियोंका चित्र डफने इस प्रकार खींचा है। "They set off with little provision; no baggage except the blanket on their saddles; and no animals but led horses, with bags prepared for the reception of their plunder. If they halted during a part of the night, they slept with their bridles in their hands : if in the day, whilst the horses were fed & refreshed the men reposed with little or no shelter from the scorching heat, excepting such as might occasionally be found under a bush or tree; and during that time their swords were laid by their sides, and their spears generally stuck in the ground at their horses' heads."

"वे अपने साथ खानेकी बहुत ही कम सामग्री लेकर निकलते थे; उनके खोगीरपर जो कम्बल होता था उसके सिवाय और कोई सामान नहीं होता था; उनके साथ सिवाय फालतू घोड़ोंके और कोई पशु न होते थे; इन घोड़ोंपर लूटका माल रखनेके लिये थैले होते थे; यदि वे रातको कहीं ठहर जाते तो हाथमें लगाम लिये हुए सोते थे; यदि दिनको ठहरते तो उनके घोड़ोंको तो खाना दिया

जाता और वे लोग स्वयं यदि किसी वृक्ष या झाड़ीका साया मिला तो मिला, नहीं जो जलती धूपमें ही सो रहते थे; ऐसे समयमें उनकी तलवारें तो उनके बगलमें होतीं और उनके बर्छे घोड़ोंके सिरके पास गड़े होते थे।"

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे सिपाही भी होते थे जो नियत वेतन पाते थे और सदैव उस सरदारकी सेवामें ही रहते थे। ये लोग पूर्णतया विश्वसनीय होते थे।

ऐसी सेनाके दोष स्पष्ट ही हैं। इसके द्वारा शत्रु तङ्ग किया जा सकता है; उसका सामान लूटा जा सकता है; यह हो सकता है कि वह घबराकर हार मान ले; पर ऐसी सेना सुदृढ़ और योग्य शत्रुका सामना देर तक नहीं कर सकती। जो शत्रु धैर्य्यका अवलम्बन करनेको प्रस्तुत हो, जो इसी सेनाकी भाँति शीघ्रगामी हो, उसको हराना कठिन हो जाता है। इससे बढ़कर बात यह है कि इस प्रकारकी सेना राज्य ले तो सकती है पर उसे देरतक रख नहीं सकती; यह आक्रमणके लिये उपयोगी है पर संरक्षणके लिये नहीं। इन्हीं सब कारणोंसे मराठोंको आरम्भमें चौथ और सरदेशमुखी लेकर ही सन्तुष्ट रहना पड़ा; परन्तु अब इससे काम नहीं चल सकता था। अब मराठे स्वयं राज्य कर रहे थे और उनको प्रबल राष्ट्रोंसे काम पड़ता था। अब उनको लुटेरोंकी नहीं, सुदृढ विश्वास-योग्य सिपाहियोंकी, आवश्यकता थी। यह आवश्यकता माधवरावको औरोंसे अधिक थी, क्यों कि उनकी परिस्थिति औरोंसे भिन्न थी। इसके अतिरिक्त एक और बात थी, जिसने उनके विचारों पर प्रभाव डाला था। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, वे रानोजीके औरस पुत्र नहीं थे। इस लिये और मराठा सर्दार उनसे कुछ असन्तुष्ट रहते थे और

माधवरावको यह आशङ्का थी कि वे समय पर मेरी पूरी सहायता स्यात् न करें। यह दशा देखकर उन्होंने सोचा कि एक ऐसी सेना होनी चाहिये जिसका नेतृत्व जागीरदारोंके हाथमें न हो और जिसके ऊपर उनका विशेष अधिकार न हो। यह तभी हो सकता था जब कि सेनाका रूप ही पलट दिया जाय, उसके नायक पुराने सर्दार-वंशोंमेंसे नहीं प्रत्युत अन्य रीतिसे चुने जायँ और उसमें केवल मराठे ही नहीं प्रत्युत और जातिके, विशेषतः हिन्दुस्तानी पूर्विये जिन्होंने कम्पनीकी सेवामें अपनी वीरतासे बड़ा नाम कमाया था, सैनिक रक्खे जायँ। प्रथम मराठा युद्धमें गॉडर्ड और पॉपहमके सिपाहियोंके कौशलने उनके विचारोंको और भी पक्का कर दिया और उन्होंने सेनाका सुधार करना, या यों कहना चाहिये कि नयी सेना प्रस्तुत करना, निश्चित कर लिया। इस अध्यायमें इस नयी सेनाकी उन्नति और सङ्गठनका कुछ संक्षिप्त वृत्तान्त दिया जायगा और उन लड़ाइयों-का भी कुछ कथन होगा जिनमें उसने यश प्राप्त किया।

सबसे पहली खोज अफसरकी होती है। इस विषयमें माधवराव बड़े ही भाग्यशील निकले। उन्होंने जिस व्यक्तिको अपना प्रधान सेना-नायक चुना उसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठसे सभीने की है। इन सज्ज-नका नाम बेनॉय डि बॉयन था। उस कालमें योरपके सभी देशोंसे न जाने कितन मनुष्य धन कमानेकी लालसासे भारत आते थे। इनमें कितने ही लोभी, कृतघ्न और दुराचारी थे, पर कुछ वस्तुतः सज्जन, सुयोग्य और कृतज्ञ भी थे। इनमेंसे बहुतोंने न्याय या अन्यायसे धनसंग्रह किया भी। डि बॉयन उन चुने हुए अच्छे लोगोंमें-से भी एक चुने हुए मनुष्य थे। इस स्थानपर, जैसा कि माधवरावके अन्य जीवनी-लेखकोंने किया है, मैं भी डि बॉयनकी जीवनी थोड़ेमें

लिखता हूँ। उसके साथ ही हमारे मूल विषय, माधवरावके सेनासुधार, की भी चर्चा हो जायगी। यह वृत्तान्त मैंने 'मेमॉयर्स आव कर्नल जेम्स स्किनर' Memoirs of Col. James Skinner) से लिया है। ये स्किनर भी एक असाधारण व्यक्ति थे। ये यूरेशियन थे (अर्थात् इनके पिता अँगरेज और माता भारतीय थीं)। बचपनमें इनके पिता इनको और कामोंमें लगाया चाहते थे पर पीछेसे ये डि बॉयनके नीचे शिंदे-सेनामें भर्ती हुए। इस सेनामें कई बरस रहकर इन्होंने कई लड़ाइयाँ देखीं और बड़ी प्रतिष्ठा पाई। पीछेसे दौलतराव शिंदेके शासन-कालमें इनको शिंदे-सेना छोड़नी पड़ी। दौलतराव अँगरेजोंसे लड़नेवाले थे। ये लोग इसके लिये भी प्रस्तुत थे, पर उस समयके प्रधान सेना-नायक पेरनने इनका विश्वास न किया और निकाल दिया। तब ये अँगरेजोंसे मिल गये। फिर भी इन्होंने यह स्पष्ट शर्त कर ली कि मैं अपने पुराने स्वामी शिंदे-सर्कारके विरुद्ध कभी न लड़ूँगा। इसका इन्होंने सदैव पालन किया। अँगरेजी सेनामें भी इन्होंने बड़ा नाम पाया। अब भी सवारोंकी एक पल्टनका नाम 'स्किनर्स हार्स' (Skinners Horse) है।

डि बॉयनका जन्म इटलीके उत्तर सैवॉय प्रान्तमें हुआ था। इन्होंने लड़कपनसे ही सेनामें काम करनेका विचार कर लिया था। पहले इन्होंने फ्रांसमें सेवा की और वहाँ वे पाँच वर्ष रहे। इसी समय इन्होंने सैनिक प्रबन्धका बहुत कुछ ज्ञान उपार्जित किया। तीव्र-बुद्धि और उत्साही होनेसे थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया। परन्तु उस नौकरीसे इन्हें सन्तोष न हुआ। वहाँ तरक्की बहुत धीरे धीरे होती थी। फ्रांसकी नौकरी छोड़कर इन्होंने रूसकी नौकरी की। उस समय रूस और तुर्कोंसे युद्ध हो रहा था। उस लड़ा-

ईसे इनका अनुभव और भी बढ़ा। युद्ध समाप्त होने पर इन्होंने वह सेवा भी छोड़ी। भारतकी प्रशंसा तो बहुत कुछ सुन ही चुके थे; अब इन्होंने भारत आनेका विचार किया। रास्तेमें इनको कुछ दिन मिश्रमें ठहरना पड़ा। वहाँ एक अँगरेज सज्जनने इनको कुछ परिचय-पत्र दिये जिनके द्वारा इनसे भारत आने पर मद्रासके गवर्नर मिस्टर रम्बोल्डसे भेंट हुई। उन्होंने इनको एक देशी पल्टनके साथ नियुक्त कर दिया। उसके साथ ये मैसूर युद्धमें सम्मिलित हुए। यहाँ इनको भारतीय सिपाहियोंका भी अनुभव हो गया। मिस्टर रम्बोल्डके जाने-पर लार्ड मैकॉर्टनी मद्रासके गवर्नर हुए। उनसे और डि बॉयनसे न पट सकी, इस लिये इनका विचार फिर रूस जानेका हुआ। रास्तेमें ये कलकत्ते ठहरना चाहते थे। मैकॉर्टनीने इनको वारन हेस्टिंग्जके नाम परिचय-पत्र दे दिया।

हेस्टिंग्जने इनका अच्छा सत्कार किया और इनको कई अँगरेज कर्म्मचारियों और देशी नरेशोंके नाम परिचयपत्र दे दिया। इन पत्रोंसे डि बॉयनको बड़ी सहायता मिली। लखनऊमें नव्वाबने इनका अच्छा स्वागत किया और बहुत कुछ भेंट भी दिया। लखनऊसे ये दिल्ली चले, पर यह यात्रा पूरी न हुई। रास्तेमें शिंदेका पड़ाव पड़ता था। वहाँ ये अँगरेजी राजदूत मि० एण्डर्सनके निमंत्रणसे गये। पर शिंदेको इनके विषयमें सन्देह हो गया, इस लिये चुपकेसे इनका सामान चुरवा लिया गया। और सब तो लौटा दिया गया पर इनके कागजपत्र इन्हें फिर देखनेको न मिले। उन्हीं दिनों माधवरावने ग्वा-लियरके किलेको, जो गोहदके राणाका था, घेर रक्खा था। डि बॉयन-ने राणासे पत्रव्यवहार आरम्भ किया। उसका तात्पर्य्य यह था कि यदि मुझे एक लाख रुपये दिये जायँ तो मैं यमुना पारसे सिपाहियोंकी

दो पल्टनें प्रस्तुत करके शिंदेके पड़ाव पर छापा मारूँगा और उनको ग्वालियरके सामनेसे हट जाने पर विवश करूँगा। राणाको इनका विश्वास नहीं था, इस लिये उन्होंने प्रस्ताव स्वीकार न किया पर किसी युक्तिसे यह बात माधवरावके कान तक पहुँचा दी जिससे वे घबरा जायँ। माधवरावको डि बॉयन पर सन्देह तो पहलेहीसे था। वह इस बातसे और भी बढ़ गया।

इधरसे निराश होकर डि बॉयनने जयपुरके महाराजा प्रतापसिंहके पास आवेदन भेजा। उन्होंने स्वीकार कर लिया और प्रबन्ध होने लगा। इसी बीचमें हेस्टिंग्जने इनको कलकत्ते बुला लिया और जब तक ये लौटकर आये तबतक प्रतापसिंहने अपना विचार पलट दिया और इनको १०,००० रुपया देकर बिदा कर दिया।

इस बातकी सूचना भी माधवरावको मिल ही गई। यह भी एक विचित्र बात थी कि जिन माधवरावके यहाँ आगे चलकर इनको इतनी सेवा करनी थी उनको इन्होंने दो बार इस प्रकार रुष्ट किया।

इन्हीं दिनों माधवराव बुन्देलखण्डमें एक सेना भेजनेवाले थे। डि बॉयन भी दो जगहोंसे निराश हो चुके थे। कुछ सोचकर उन्होंने माधवरावके पास ही आवेदन भेजा। यह स्वीकार कर लिया गया। यह निश्चित हुआ कि दो पल्टनें प्रस्तुत की जायँ। प्रत्येकमें ८५० मनुष्य हों। इनकी वर्दी, शस्त्र और कवायद अँगरेजी सेनाके सदृश हों। व्ययके लिये कोई परिमित संख्या धनकी न देकर माधवरावने डि बॉयनको १००० रुपया मासिक और प्रत्येक सिपाहीको ८) मासिक देना निश्चित किया। डि बॉयनने सिपाहियोंको ५) मासिक दिया और जो प्रति सिपाही ३) बचता था उसीमेंसे अफसरोंके वेतन दिये गये। अफसर कई जातिके यूरोपियन थे और इनको वेतन बहुत

देना पड़ता था, इसलिये काम कुछ सरल न था। अफसरोंके अतिरिक्त सिपाही एकत्र करने थे, शस्त्र संग्रह करने थे, तोपें ढालनी थीं। फिर भी पाँच महीनेमें यह सब काम पूरा हो गया और शिंदेकी नयी सेनाका यह प्रथमांकुर कार्य्यके लिये प्रस्तुत हो गया।

इस सेनाके प्रधान नायक आप्पा खण्डेराव थे। डि बॉयन उपनायक थे। बुन्देलखण्डकी लड़ाइयों और विशेषतः कालिञ्जरके: किलेकी लड़ाईमें इसने बहुत अच्छा काम किया। यहाँसे छुट्टी मिलते ही माधवरावने इसे हिन्दुस्तान बुला लिया। जिस कामके लिये यह सेना बुलाई गई थी उसका कथन पाँचवें अध्यायमें हो ही चुका है; इसीकी सहायतासे मुसलमान सर्दारोंको दबाकर माधवरावने पेशवाको वकीलुलमुल्क और अपनेको नायब वकीलुलमुल्ककी उपाधि दिलवाई थी।

इसके पीछे ही मुगल-सर्दारोंका विद्रोह खड़ा हो गया। जयपुर और जोधपुरके नरेश भी मुगलोंसे मिले हुए थे। शिन्दे पहले राजपूतोंके दमनके लिये आगे बढ़े। उनके साथ शाह आलमकी सेनाका भी एक विभाग था। इसके नायक मुहम्मद बेग हमादानी और इस्माइल बेग थे। शिन्देको इनका विश्वास तो था नहीं, पर जबतक ये लोग खुलकर विश्वासघातका कोई काम न करें तबतक कुछ कहना उचित नहीं समझा गया।

जयपुर पहुँचते पहुँचते मुहम्मद बेग और इस्माईल बेग राजपूतोंसे जा मिले, पर थोड़ेसे मुगल अब भी रह गये थे। शीघ्र ही युद्धकी तय्यारी हुई। शिंदेने अपनी सेनाका दक्षिणाङ्ग म० लेस्टिनोके अधीन रक्खा और वामाङ्ग डि बॉयनके; बीचमें मुगलोंकी २५ पल्टनें रक्खी गई और स्वयं माधवरावने सवारोंको अपने अधीन रक्खा। युद्ध

आरम्भ होनेके थोड़े ही देर पीछे मुहम्मद बेग मारा गया, पर इस्माईल बेग उसके सिपाहियोंको लेकर बढ़ा। उसके वेगने लेस्टिनोके सिपाहियोंको पीछे हटा दिया, पर माधवरावने उनको सँभाल लिया। दहिनी ओर दस सहस्र राठौर सवारोंने डि बॉयनकी पल्टनों और तोपों पर धावा मारा। इनकी वीरताकी स्किनरने बड़ी प्रशंसा की है। इनका भी वेग बड़ा प्रचण्ड था, पर थोड़ी देरमें इनमेंसे बहुतसे मारे गये और शेषको पीछे हटना पड़ा। बस इसी अवसर पर मुगल पल्टनोंने धोखा दिया। इनको डि बॉयनके सिपाहियोंके साथ आगे बढ़ना चाहिये था पर ये जहाँके तहाँ खड़े रहे। जीत हाथमें आकर निकल गई। इतना ही नहीं, दूसरे दिन सब मुगल इस्माईल बेगसे जा मिले और अपने साथ ८० तोपें भी लेते गये। अब जीत तो दूर रही, अपनी रक्षाका प्रश्न आकर उपस्थित हुआ।

इसके पीछे जो कुछ हुआ उसका उल्लेख भी पाँचवें अध्यायमें हो चुका है। वहाँ हम बतला चुके हैं कि गुलाम कादिरके साथ कैसी कैसी लड़ाइयाँ हुईं और अन्तमें उसकी क्या गति हुई। यहाँ पर इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि इन सब लड़ाइयोंमें डि बॉयन और उनके सैनिक उपस्थित थे और सबमें ही उन्होंने यश पाया।

दिल्लीके झगड़ोंके शान्त होने पर भी कुछ दिनों तक डि बॉयन शिन्देके पास रहे, पर वे सन्तुष्ट नहीं थे। उनके नीचे बहुत थोड़े सिपाही थे और यद्यपि उनसे काम बहुत लिया जाता था, नामके लिये कोई और ही सर्दार सेनापति, बना दिया जाता था। इस लिये उन्होंने शिंदेसे यह प्रार्थना की कि मेरे सिपाहियोंकी संख्या १०,००० कर दी जाय। कई कारणोंसे उस समय यह प्रस्ताव स्वीकार न हो सका और डि बॉयनने पदत्याग कर दिया। नौकरी छोड़कर वे

लखनऊ चले आये और व्यापारमें लगे। उनको यहाँ जनरल क्लॉड मार्टिनकी सहायतासे, जिनका नाम ला मार्टिनियर कॉलेज और अन्य दान-संस्थाओंने नित्य स्थायी कर रक्खा है, बहुत कुछ लाभ हुआ।

पर डि बॉयन सिपाही थे और सिपाहीका चित्त व्यापारमें बहुत दिनोंतक नहीं लग सकता। उधर माधवरावकी आवश्यकताओंकी भी पूर्ति नहीं हुई थी। इस लिये उन्होंने डि बॉयनको फिर बुलवाया। मथुरामें भेंट हुई और भेंट होते ही सब बातें ठीक हो गईं। यह निश्चित हुआ कि १०,००० सिपाहियोंकी तेरह पल्टनें रक्खी जायँ। डि बॉयनका वेतन ४०००) मासिक कर दिया गया। इस सेनामें ५०० सवार और शेष पैदल थे। साठ तोपें थीं। कुल मिलाकर १२,००० मनुष्य थे। इसके लिये अफसर भी बहुत चुनचुनकर रक्खे गये। सभी सज्जन, कुलीन, सुशिक्षित, सुशील और राजभक्त थे और इनके प्रयत्नसे थोड़े ही दिनोंमें सेना कामके योग्य हो गई।

पहले पहल यह सेना जयपुर और जोधपुरके विरुद्ध भेजी गई। राजपूतोंके साथ इस्माईल बेग भी था। उसने अजमेर प्रदेशके पाटन नगरके पास अपनी सेना खड़ी की। २० जून १७९० (सं० १८४७) को यह लड़ाई हुई। सबेरे ९ बजे लड़ाई आरम्भ हुई और दोपहरके पीछे उसने बड़ा उग्ररूप धारण किया, पर अन्तमें इस्माईलकी हार हुई। वह स्वयं तो जयपुर भाग गया पर उसकी सेना सदाके लिये नष्ट हो गई। मराठोंके भी सब मिलाकर ग्यारह बारह सहस्र मनुष्य मारे गये पर शत्रुकी सारी सामग्री उनके हाथ लगी और लगभग १५,००० सिपाही उनसे आकर मिल गये। इसके अतिरिक्त पाटनका नगर और किला भी उनके हाथ आया। माधवराव इस समय मथुरा थे। इस लड़ाईका समाचार पाते ही उन्होंने डि

बॉयनको जोधपुर भेजा। मेड़ताके मैदानमें दोनों सेनायें मिलीं। जोधपुरकी सेनामें ३०,००० सवार और २०,००० पैदल थे। इन राठौर सवारोंकी बड़ी ही प्रशंसा की गई है। स्किनर कहते हैं कि इनमें निर्भयता चरमसीमातक पहुँच गई थी। इसी युद्धमें ४००० राठौरोंके एक झुण्डने डि बॉयनकी तोपों पर इस वीरतासे आक्रमण किया कि लोगोंके छक्के छूट गये। मराठोंकी तोपें बच गईं पर स्वामिकार्य्यमें सब राठौरोंने प्राणार्पण कर दिया। फिर भी यदि राठौर-सर्दारोंमें आपसकी अनबन कुछ कम होती और अमल सेवन करनेका प्रेम भी कुछ कम होता तो उनके जीतकी सम्भावना थी, क्योंकि डि बॉयनकी पल्टनें और मराठोंके पीछे रणक्षेत्र पर पहुँचीं। पर उनसे यह सब कुछ भी न करते बना और अन्तमें परास्त हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि जयपुर, जोधपुर और उदयपुरके नरेशोंको माधवरावसे संधि करनी पड़ी।

इन लड़ाइयोंने डि बॉयनकी पल्टनोंकी कीर्ति दूर तक फैला दी और माधवरावको भी इनकी उत्तमतापर पूर्ण विश्वास हो गया। इस लिये उन्होंने इनकी संख्या तिगुनी करनेका विचार किया। इस उद्देश्यसे उन्होंने यमुनाके पूर्व किनारे पर बाईस लाख रुपये सालकी आमदनीके बावन परगने डि बॉयनको दिये। इसी रुपयेसे उन्होंने ३०,००० सिपाहियोंका प्रबन्ध किया। इस बाईस लाखमें दो रुपया सैकड़ा डि बॉयनको मिलता था, इसके अतिरिक्त उनको ६०००) मासिक वेतन मिलता था। डि बॉयनने अलीगढ़से कुछ दूरपर 'कोयल' नामक स्थानमें अपना निवासस्थान बनाया।

एक और लड़ाई इस सेनाको लड़नी पड़ी और वह उपर्य्युक्त सभोंसे भीषण थी। तुकोजी होल्करकी नीति हम ऊपर कई बार दिखला

चुके हैं । वह प्रायः माधवरावसे भिन्न होती थी । उनसे माधवरावकी यह उन्नति देखी न गई । उस समय महारानी अहल्याबाई वृद्ध हो गई थीं और होल्कर राज्यके शासक तुकोजी ही थे । उन्होंने भी नये ढङ्गकी एक सेना प्रस्तुत करनेका विचार किया और ड्यू ड्रेनेक उसका नायक नियत किया । ड्रेनेक बहुत योग्य और अनुभवी सेनानी थे और उन्होंने थोड़े ही दिनोंमें चार अच्छी पल्टनें प्रस्तुत कर दीं ।

सन् १७९२ (सं० १८४९) में माधवराव दक्षिणकी ओर चले । उनके नर्म्मदा पार होते ही उनके शत्रुओंने सिर उभाड़ा । सबसे पहले हमारे पुराने मित्र गुलाम कादिरकी बहिन, जो कानौंदके किलेमें रहती थीं, विरोध पर तत्पर हुईं, उन्होंने इस्माईल बेगको अपना सेनापति नियत किया । यह किला बड़ा ही दृढ़ बना हुआ था । डि बॉयनने इसको लेनेके लिये कर्नल पेरनको भेजा । पहले इस्माईल किलेके बाहर आकर लड़ा, पर हार कर भीतर चला गया । इतनेमें गढ़-स्वामिनीका देहान्त हो गया । इस्माईल अब भी लड़ाई बढ़ाना चाहता था पर सिपाही हताश हो गये थे और उसे ही मार डालना चाहते थे, इस लिये उसने किला पेरनको सौंप दिया और वह स्वयं कैद करके आगरे भेज दिया गया । वहीं उसकी मृत्यु हुई ।

यह उपद्रव शान्त होने ही न पाया था कि दूसरा उठ खड़ा हुआ । होल्कर अपनी सेना लेकर हिन्दुस्तान चले आये और उन्होंने माधवरावके प्रतिनिधि गोपालराव भाऊसे झगड़ेका आरम्भ किया । लड़नेके इच्छुकको बहानोंकी कमी नहीं होती । देखते देखते युद्ध छिड़ गया ।

कानौंद और अजमेरके बीचमें लखैरीका पहाड़ी दर्रा है । वहीं २० सितम्बर १७९२ (सं० १८४९) को दोनों सेनाओंमें मुठ-

भेड़ हुई। होल्करके पास ड्यू ड्रेनेककी पल्टनोंके अतिरिक्त ३०,००० सवार थे। डि बॉयनके पास अपनी पल्टनके कुल ९,००० सिपाही थे; हाँ युद्धके कुछ पहले लकवा दादा कुछ सवार लेकर पहुँच गये थे।

ड्यू ड्रेनेकने अपने सिपाहियोंके लिये बड़ी अच्छी जगह चुनी थी। उनके आदमी पहाड़ी पर थे; नीचेकी भूमि बर्साती पानीके कारण दलदलसी हो रही थी। उनके पास अढ़तीस तोपें थीं और दोनों ओर घना जङ्गल था। डि बॉयन समझ रहे थे कि यह और लड़ाइयोंकी भाँति लड़ाई नहीं है। औरोंमें अपने सिपाही सुशिक्षित और सुसज्जित होते थे पर शत्रु चाहे कितना ही वीर हो कुशिक्षित और कुसज्जित होता था; इस बार दोनों पक्ष सुशिक्षित और सुसज्जित थे और ड्यू ड्रेनेक बड़ा योग्य व्यक्ति था। इस लिये डि बॉयनने बहुत समझ समझ कर काम किया।

पहले तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जीत शत्रुकी ही होगी। इनके बारूदके एक ढेरमें एक गोलेके गिरनेसे आग लगी। इससे फैलते फैलते दस बारह जल उठे और शोर मचनेके साथ ही एक प्रकारकी घबराहट भी उत्पन्न हुई। इसी अवसर पर होल्करके सवारोंने धावा मारा। डि बॉयनके पास सवार थोड़े थे, वे इस आक्रमणको रोक न सके। परन्तु इनके पैदल ऐसे घने जङ्गलमें थे कि सवार वहाँ घुस न सके। वहाँसे इन लोगोंने गोलियाँ बरसानी आरम्भ कीं। होल्करके सवार इन गोलियोंके सामने ठहर न सके; उनकी पंक्तियाँ बिगड़ गईं; इसी समय डि बॉयनके पैदल और तोपोंने चोटी पर धावा किया। वहाँ ड्यू ड्रेनेक स्वयं खड़े थे। उनके साथ चुने हुए १५०० सिपाही थे। इन सिपाहियोंने बड़ी वीरतासे आक्रमणको रोका, यहाँ तक कि इनमेंसे प्रायः सभी मारे गये। इस लड़ाईने होल्करका बल

तोड़ दिया। उनकी प्रायः सभी युद्धसामग्री विजेताके हाथ लगी। तुकोजी अपनी सेनाके शेषांशको लेकर मालवा लौट आये। वहाँ माधव-रावकी राजधानी, उज्जैन, को लूट कर उन्होंने अपने चित्तको सन्तोष दिया।

जयपुरके राजा प्रतापसिंह भी होल्करके सहायक थे। उन्होंने भी शीघ्रतासे सन्धि कर ली और लड़ाईके व्ययके बदलेमें ७०,००,००० (सत्तर लाख) रुपयेका दण्ड देना स्वीकार किया।

इसके पीछे डि बॉयनको किसी बड़ी लड़ाईमें सम्मिलित होनेका काम नहीं पड़ा। इस युद्धके दो वर्ष पीछे माधवरावका देहान्त हुआ। दौलतराव गद्दीपर बैठे। इनका स्वभाव उतना ही सदोष था जितना कि माधवरावका गुणयुक्त और इनके शासनकालमें शिन्दे राज्य शीघ्र ही श्रीहत हो गया। यह उत्तम सेना भी कीर्ति-च्युत हो गई। इसके कई कारण थे, पर यहाँ उनका लिखाजाना अनावश्यक है।

हर्षकी बात है कि डि बॉयनको ये बुरे दिन न देखने पड़े। वे शिन्दे-वंशके सच्चे हितैषी थे। उनको कई और नरेशोंने अधिक वेतन पर अपने यहाँ रखना चाहा पर उन्होंने यह सब स्वीकार न किया। अपने प्रिय स्वामीके मरनेके दो वर्ष पीछे तक वे काम करते रहे, फिर उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। इसका प्रधान कारण यह था कि इतने वर्षोंके निरन्तर परिश्रमने उनके स्वास्थ्यको बिगाड़ दिया था। अब वे विश्राम करना चाहते थे। निदान सन् १७९६ (सं० १८५३) में वे अपने प्रिय मित्रों और वीर सैनिकोंसे बिदा होकर कलकत्ते आये। उनके साथ उस समय ६०० सवार थे। कलकत्तेमें इनसे बिदा होकर वे स्वदेश चले गये। जाते समय वे अपने साथ

बहुतसा धन ले गये थे और जहाँ तक पता लगता है उसको उन्होंने सर्वथा अच्छे कामोंमें लगाया।

इस असाधारण व्यक्तिकी प्रशंसा जहाँ तक की जाय उचित है। हम कैप्टेन जे. स्मिथके कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं जो सर्वथा युक्त हैं:—

" De Boigne is formed by nature to guide and to command....On the grand stage where he has acted a brilliant and important part for these ten years, he is at once dreaded and idolized....He possessed the art of gaining the confidence of both princes and subjects...he continued at business of the most varied and important character from sunrise to midnight- It was his earnest aim to soften, in all ways, the horrors of war....His justice was un-common. He raised the prower of Madhajee Sindia to a pitch that chief could never have expected."

"डि बॉयनको प्रकृतिने नेतृत्वके लिये बनाया है। जिस बृहन्नाट्य-मञ्च पर उन्होंने दस वर्ष तक इतने महत्त्वका और अत्युत्कृष्ट अभिनय किया है, उस पर लोग उनको डरते और साथ ही प्यार भी करते हैं। उनमें राजा और प्रजा दोनोंको प्रसन्न करनेका गुण था। वे सबेरेसे आधी रात तक भाँति भाँतिके महत्त्वपूर्ण कामोंमें लगे रहते थे। वे सदा यह प्रयत्न किया करते थे कि युद्धके आनुषङ्गिक कष्ट कुछ कम दुःखद हों। उनकी न्यायपरता असाधारण थी। उन्होंने माधवराव शिंदेकी शक्तिको प्रतीक्षातीत सीमा तक पहुँचा दिया।"

इनके अतिरिक्त इस सेनामें, फाल्मन, हेसिङ्ग, फ्रीमाण्ट, डूजन, सदरलैण्ड, आदि और भी कई योग्य सेना-नायक थे। कर्नल पेरनका नाम पहले आही चुका है। वे ही डि बॉयनके उत्तराधिकारी हुए।

यह माधवरावकी सेनाकी प्रधान लड़ाइयाँ हैं। इनके अतिरिक्त एक और युद्ध हुआ जिसका महत्त्व कुछ कम नहीं है परन्तु उसमें डि बॉयन आदि बड़े सेना-नायक सम्मिलित नहीं हुए थे, और न उस समय माधवरावके पास नये ढंगकी सेना थी।

दिल्लीमें प्राधान्य प्राप्त करके शिंदेकी स्वभावतः यह इच्छा हुई कि मालवेसे दिल्ली तक सुरक्षित रास्ता मिल जाय, जिससे समय पर प्रत्यके भाँतिकी आवश्यक सहायता पहुँचती रहे। मार्गमें राघोगढ़का राज्य पड़ता था। यह खीची राजपूतोंके हाथमें था। यह बड़ा प्राचीन वंश था और उदयपुरके शीसौदियोंकी भाँति उसे भी अपनी शुद्धताका गर्व था। सन् १७८० (सं० १८३७) में राजा बलवन्तसिंह गद्दीपर बैठे। इन्हींके विरुद्ध, अपना मार्ग निष्कण्टक बनानेके लिये, माधवरावने सेना भेजी। इस लड़ाईमें शेरसिंह नामके एक खीची सर्दारने बड़ी वीरता, स्वदेशभक्ति और सज्जनताका परिचय दिया। पर माधवरावका सामना करना हँसी खेल न था। बलवन्तसिंहकी हार हुई। जब जयपुर और जोधपुरसे सन्धि हुई तो उन राज्योंके नरेशोंने बीचमें पड़कर बलवन्तसिंहको छुड़वा दिया, परन्तु शिंदेके सेनापति अम्बाजी इङ्गलियाने राघोगढ़का किला न लौटाया।

बलवन्तसिंहकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र जयसिंह राजा हुए। उस समयका इतिहास माधवरावकी मृत्युके पीछेका है। केवल इतनी बात स्मरण रखने योग्य है कि राघोगढ़का राज्य फिर खीचियोंको मिल गया। उसका विस्तार पहलेसे बहुत कम हो गया है पर अब भी वह खीचियोंके हाथमें ही है।

माधवरावकी नयी सेनाने जो कुछ काम किया वह अत्यन्त महत्त्वका था। वह और नरेशोंके लिये आदर्श हो गई। उस समयसे सभी

देशी राष्ट्रोंने उसीके ढङ्ग पर अपनी अपनी सेनाका सुधार किया। इस बातने भारतके इतिहास पर बहुत कुछ प्रभाव डाला है। इसीका यह फल हुआ कि पीछेकी लड़ाइयोंमें जब अँगरेजोंको मराठों और सिक्खोंका सामना करना पड़ा तो उन्हें बहुत कुछ प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ा। ये लड़ाइयाँ प्लासीकी लड़ाईकी भाँति नहीं थीं। हाँ, फिर भी अन्तमें अँगरेजोंकी जीत हुई। इसके कई कारण हैं, पर उनपर विचार करनेका यह स्थान नहीं है।

८—माधवराव और पूना-दर्बार ।

जिस समय माधवरावको मेड़ताकी लड़ाईका समाचार मिला वे मथुरामें थे । इस स्थानको उन्होंने कई कारणोंसे चुना था । एक तो मथुरा तीर्थस्थान है, दूसरे आगरा और दिल्लीके बीचमें है। आगरा शिंदे-सेनाका मुख्य स्थान था और दिल्ली, साम्राज्यकी राजधानी । मथुरासे जाटों पर भी दबाव डाला जा सकता था, राजपूतों पर भी दृष्टि रक्खी जा सकती थी और दिल्लीसे दक्षिणका मार्ग भी सुरक्षित रक्खा जा सकता था ।

इस मेड़ताकी लड़ाईने राजपूतोंका भय दूर कर दिया। अब माधव-राव दक्षिण जानेकी आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। वहाँ नाना फड़नवीस मुख्य पुरुष थे । सारा प्रबन्ध उनके हाथमें था । माधव-राव बराबर प्रयत्न करके उनको प्रसन्न रखते थे, इसी लिये नाना भी अवसर पर उनकी सहायता किया करते थे । पर इधर वायु कुछ विपरीत प्रतीत होती थी । जब टीपू सुल्तानसे अँगरेजोंसे लड़ाई हुई तो माधवरावने अँगरेजोंको सहायता देनी चाही पर उनका प्रस्ताव साभार अस्वीकृत हुआ, परन्तु उसी समय अँगरेजोंने नानासे सहायता ली । यह बात माधवरावको खटक रही थी । उधर तुकोजी होल्करका व्यवहार भी सन्तोष-जनक नहीं था । महारानी अहल्याबाई माधव-

रावको मानती थीं और सदैव उनका पक्ष लेती थीं। एक बार माधवरावको धनकी आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने उनको ऋणके नामसे तीस लाख रुपया दिया, पर उसे कभी वापस न लिया। पर अब वे वृद्ध हो गई थीं और तुकोजी, जो पहले उनके दबावसे कुछ बोल न सकते थे, अब विरोधी रहे थे। इन्हीं सब कारणोंसे माधवरावने एक बार पूने जाना आवश्यक समझा।

इस उद्देश्यसे थोड़ेसे चुने सिपाहियोंको लेकर माधवराव पूने आये। उन्होंने यह प्रगट किया कि मुझे सम्राट् शाह आलमने पेशवाके लिये पत्र और भेंट लेकर भेजा है। ११ जून १७९२ (सं० १८४९) को वे पहुँच गये। दस दिन पीछे, अर्थात् २१ जूनको पेशवाका दर्बार हुआ। दर्बार देखनेयोग्य था। माधवरावने अनपेक्षित व्यवहारका आश्रय लिया। "The virtual sovereign ruler of Hindustan, victorious in diplomacy or war over all opponents, lord of vast provinces and of unconquered legions, he approached the State-enclosure on foot, leaving his elephant and his body guard of grenadiers under European officers at the confines of his own camp." "हिन्दुस्तानके वस्तुतः स्वामी, युद्ध और राजनीतिमें अपने सब शत्रुओंके विजेता, बृहत् प्रान्तोंके अधिपति और अविजित सेनाके अधीश्वर,—यह सब होते हुए भी, वे अपने हाथी और यूरोपियन अफसरोंके अधीन अपने रक्षक सिपाहियोंको अपने डेरेपर ही छोड़कर राजबाड़ेकी ओर पैदल ही गये।" राज-डेरेपर पहुँचकर वे सब सर्दारोंसे नीचे बैठे; पेशवाके आनेपर सबके साथ ही खड़े हुए और बैठनेकी आज्ञा होने पर भी खड़े ही रहे। उसी समय उन्होंने अपने पाससे एक गठरी निकाली और उसमेंसे एक जोड़ा जूतोंका

निकाला, फिर पेशवाके पाँवसे पहने हुए जूतोंको उतार कर उसी गठरीमें बाँध लिया। यह करते समय उन्होंने नम्र स्वरसे कहा "यह मेरे पिताका काम था और यही अब मेरा काम है।" (रानोजीका वृत्तान्त पहले दिया जा चुका है)। यह सब करके उन्होंने नये जूते भक्तिके साथ पेशवाके आगे रख दिये और जब पुनः आज्ञा दी जाने पर बैठे भी, तो पुराने जूतोंको अपने पास रक्खे ही रहे।

दूसरे दिन इससे भी बड़ा दर्बार हुआ। इसमें पेशवाको शाह आलमकी दी हुई वकीलुलमुल्ककी उपाधि विधिपूर्वक दी जानेको थी। एक बड़े शामियानेमें एक सिरेपर एक रिक्त सिंहासन था। उसपर पेशवाने १०१ मुहरोंकी भेंट रक्खी। फिर वे माधवरावके साथ पासके एक खेमेमें चले गये और वहाँसे अपने पदके उपयुक्त वस्त्र पहिनकर निकले। उनके खिलतपर पाँच बहुमूल्य आभूषण चमक रहे थे; उनके एक हाथमें तलवार थी और दूसरेमें एक मुहर और एक मसिगर्भा। इसके अतिरिक्त मोरछल, सुनहरी कुर्सियाँ, घोड़ा, हाथी, झण्डे आदि दर्बारमें लाये गये। सबके पीछे दो शाही फरमान (आदेश पत्र) पढ़े गये। एकके द्वारा सम्राट्ने माधवरावको अपने पीछे नायब-वकील चुननेका अधिकार दिया और दूसरेके द्वारा साम्राज्यमें गोवध बन्द कर दिया।

इन दर्बारोंके विषयमें लोगोंने माधवरावको बहुत कुछ बुरा भला कहा है। उनका सदैव अपनेको पटेल कहना और दर्बारमें पेशवाके जूते उठाना उनके दाम्भिक होनेका प्रमाण माना जाता है। लोगोंका कहना यह है कि यह असम्भव है कि उनको हृदयसे पेशवाके लिये ऐसी श्रद्धा रही हो, यह ढोंग केवल दिखलानेके लिये रचा गया था। इसी प्रकार दूसरे दर्बारमें जो कुछ हुआ वह निरर्थक उपचार था। सम्राट्में

इतना सामर्थ्य नहीं था कि वे गोवध बन्द कर सकें; जब साम्राज्य ही नष्टप्राय था तो उसके वकीलुलमुल्क होने न होनेमें क्या रक्खा था; जो कुछ अधिकार था वह माधवरावके हाथमें था, चाहे वे अपनेको नायब कहें या कुछ और।

ये सब आक्षेप निर्मूलक नहीं हैं, पर सर्वथा युक्त भी नहीं हैं। पेशवाके प्रति श्रद्धा दिखलानेके विषयमें किसीने ठीक कहा है— "Madhojee made himself a sovereign by calling himself a servant." अर्थात् "माधोजीने अपनेको सेवक कह कर अधिपति बना लिया।" माधवराव पेशवाको प्रसन्न रखनेमें ही अपना लाभ देख रहे थे। इससे पूना-दर्बारमें उनका पल्ला भारी रहेगा और तुकोजी आदि, जो उनके प्रगट विरोधी थे, और नाना फड़नवीस आदि, जो सम्भवतः गुप्तद्रोही थे, दबे रहेंगे। यह उनका स्वार्थयुक्त उद्देश्य था, पर इसमें सन्देह नहीं कि एक निःस्वार्थ भावने भी उनको प्रेरित किया था। सम्भव है कि कई देशी राष्ट्र इनको स्वतंत्र नरेश मानते रहे हों; अँगरेजोंने तो कई बार यह दिखलाना चाहा था कि माधवराव सर्वथा स्वाधीन नरपति हैं। यह इनके लिये व्यक्तिगत गौरवकी बात थी, पर ये ऐसी प्रतिष्ठा नहीं चाहते थे। ये सब पर निर्विवाद रूपसे विदित कर देना चाहते थे कि अत्यन्त प्रबल नरेश होने पर भी मैं स्वाधीन नहीं हूँ; महाराष्ट्र संघ अभी टूटा नहीं है; मैं उसका केवल एक अंग हूँ और पेशवा अब भी पूर्ववत् समस्त महाराष्ट्रके नेता हैं। उनके इस देश-भक्ति, राष्ट्र-भक्तिपूर्ण भावको न मानना सर्वथा अन्याय और पक्षपात है।

दूसरे दर्बारमें जो कुछ हुआ—उपाधि आदिका लिया दिया जाना—उसका विचार आगेके एक अध्यायमें होगा। पर इसमें भी माधवराव

केवल स्वार्थयुत व्यवहारके दोषी नहीं थे। यदि उनमें स्वार्थ था भी तो, वह जिसे अँगरेजीमें 'enlightened self-interest' बुद्धियुक्त स्वार्थ कहते हैं। निजार्थ सिद्धिकी आकाँक्षा थी पर वहींतक जहाँतक कि वह न्याय्य हो और परार्थ सिद्धिमें व्यर्थ बाधक न हो। अभीतक सम्राट्के नामका जनतामें बहुत कुछ महत्त्व था—यह प्रकट करनेसे कि पेशवा सम्राट्के प्रतिनिधि हैं, लोगोंमें उनकी स्थिति और दृढ़ हो गई; गोवध बन्द करनेसे हिन्दुओंकी श्रद्धा बढ़ गई और मुसलमानोंका गर्व कुछ कम हुआ; एक बार खुलकर ऐसी आज्ञाओंको प्रकाशित कर देनेसे सम्राट् भी बहुत कुछ विवश कर दिये गये; इन सब बातोंके साथ साथ माधवरावके हाथमें जो वास्तविक अधिकारका सूत्र था उसमें किसी प्रकारकी क्षीणता नहीं आई, उल्टे वे पेशवाके भी कृपापात्र बन गये। इसका जो कुछ परिणाम हुआ वह अगले अध्यायमें दिखलाया जायगा।

पूनेमें रहकर माधवरावने एक और तमाशा किया। उसी साल जुलाईके शाही अखबारमें जो दिल्लीसे निकलता था कुछ अनुज्ञाएँ निकाली गईं। 'निकाली गईं' इस लिये कहा जाता है कि यद्यपि घोषणा बादशाहके नामसे हुई थी पर, जैसा कि सभी जानते थे, प्रेरक माधवरावही थे। माधवरावके पास भी पूनेमें यह अनुज्ञा पहुँची। इसके अनुसार इन्होंने कलकत्तेके गवर्नरके पास पत्र भेजकर बङ्गालका कर माँगा। पाठकोंको स्मरण होगा कि सन् १७६५ (सं० १८२२) में बक्सरकी लड़ाईके पीछे शाह आलमने बङ्गाल प्रान्तकी दीवानी कम्पनीको सौंप दी थी। उसके बदले कम्पनीने प्रान्तकी आयकी बचतसे छब्बीस लाख रुपया साल शाही कोषमें देनेका वचन दिया था, पर जबसे शाह अलम मराठोंसे मिल गये यह रुपया नहीं दिया गया। बीचमें एक बार सन् १७८५ (सं० १८४२) में माधवरावके परामर्शसे रुपया माँगा भी गया पर मिला नहीं।

इस साल फिर सम्राट्के नाम पर माधवरावने रुपयेके लिये लिखा। इस समय लार्ड कॉर्नवालिस गवर्नर-जनरल थे। उन्होंने जो उत्तर दिया उसका मुख्यांश यह है:—"In the present condition of affairs at the Court of Delhi he, Sindhia, would be held personally answerable for every writing that might be issued in the name of the Emperor, and that any such attempt to assert a claim to tribute from the Bengal Government would be warmly resented" "दिल्लीके दर्बारकी वर्तमान परिस्थितिमें, सम्राट्के नामसे जो कोई पत्र निकलेगा उसके लिये सिंधिया उत्तरदाता माने जायँगे और यदि बङ्गाल गवर्न्मेण्टसे कर लेनेका कोई प्रयत्न किया जायगा तो उसका कठिन प्रतिरोध किया जायगा।" मूलमें 'resent' शब्द आया है। इसका अर्थ है 'क्रोध दिखलाना;' पर इसके पीछे जो वाक्य आये हैं (पर यहाँ छोड़ दिये गये हैं) उनसे यही स्पष्ट है कि यहाँ पर 'resent' का 'प्रतिरोध' से तात्पर्य्य है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि लार्ड कॉर्नवालिसका यह उत्तर सर्वथा अन्याय्य था। इसका दोषाच्छादन किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। उन्होंने देखा कि सम्राट् तो दुर्बल हैं और माधवराव झगड़ोंमें फँस रहे हैं—यही समझ बूझकर उनको ऐसा उत्तर देनेका साहस हुआ। उनको यह कहनेका अधिकार ही नहीं था कि इस पत्रके लिए माधवराव उत्तरदाता माने जायँगे। उसमें सम्राट्के नाम घोषणा थी, बस वह पत्र सम्राट्का हो चुका; सम्राट् किससे परामर्श लेकर काम करते थे यह पूछनेका अधिकार कॉर्नवालिसको नहीं था। सम्राट् स्वाधीन थे और वे जिसको चाहें अपना अमात्य बना सकते थे। यह कहना कि प्रतिरोध किया जायगा और भी बुरा वाक्य था

यह पूर्णतया विद्रोहसूचक था और अँगरेजोंके इस कहनेको कि हम सम्राट्को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं निर्विवाद रूपसे झूठा प्रमाणित कर रहा था।

जो कुछ हो, कॉर्नवालिसकी नीति चल गई। माधवरावको उस समय इतना अवकाश नहीं था कि वे अँगरेजोंसे लड़ सकें। उन्होंने पत्र द्वारा कॉर्नवालिसको विश्वास दिलाया कि इस विषयमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है; मैं केवल सम्राट्के अधिकारको पुष्ट करना चाहता हूँ और अँगरेजी शासनके कामोंमें अनधिकारतया प्रतिबन्धक होना नहीं चाहता। अस्तु, यह विषय यहीं समाप्त हो गया और फिर शाह आलम या उनके उत्तराधिकारीको करके नाम कभी एक पैसा भी न मिला।

९—मृत्यु ।
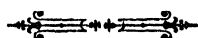
माधवरावकी अवस्था अब लगभग साठ वर्षकी थी। इस वय तक पहुँचते पहुँचते बहुतसे लोग बूढ़े हो जाते हैं। माधवराव पर भी समयने अपना बहुत कुछ प्रभाव डाल दिया था। उनकी बुद्धि अब भी तीव्र थी, उनके आशय अब भी ऊँचे थे, पर शरीरमें वह पुष्टि नहीं थी। पर उनके लिये विश्राम करना नहीं लिखा था। उच्च पदका यही दण्ड है। इतने विशाल और विस्तृत राज्यके अधिपति होने पर भी माधवराव सदैव चिन्ताग्रस्त रहते थे। हिन्दुस्तानमें उनका असपत्नप्राय अधिकार था; राजपूतानेके राज्य उनके वशवर्ती थे; अँगरेज उनसे विरोध करनेका साहस नहीं कर सकते थे परन्तु मराठा-साम्राज्यके केन्द्र-स्थान, पूनेमें उनकी स्थिति उतनी दृढ़ न थी जितनी कि चाहिये।

इसी लिये उन्होंने पूना छोड़ना उचित न समझा। धीरे धीरे पेशवा माधवराव द्वितीयसे इनकी मैत्री बढ़ चली। पेशवा अभी बालक थे, वे माधवराव ऐसे वृद्ध, पराक्रमी, प्रसिद्ध सर्दारकी श्रद्धासे प्रसन्न हो गये। इसका एक कारण यह भी था कि नाना फड़नवीस इनके ऊपर कड़ी दृष्टि रखते थे। बड़े झगड़ेके पीछे नाना इन्हें पेशवा बना सके थे, ऐसी अवस्थामें उनका व्यवहार कुछ अनुचित न था। वे जो

कुछ करते थे इनके और महाराष्ट्रके भलेके लिये ही करते थे, पर माधवराव इस बातको न समझ कर उनका विरोध करना चाहते थे। जैसा कि मि० किन्केड एक जगह लिखते हैं—" Repeatedly thwarted and insulted by the unreasonable boy, Nana Phadnavis never loses his self-control.' " इस दुर्बुद्धि लड़के द्वारा बार बार प्रतिरुद्ध और अपमानित होने पर भी नाना फड़नवीसने अपना आत्मसंयम (धैर्य्य, शान्ति) कभी नहीं छोड़ा।" इसमें केवल पेशवाका ही दोष न था। राघोबाके पुत्र बाजीरावने कुछ लोगोंको इसी लिये नियत कर रक्खा था कि वे माधवरावका चित्त नानाकी ओरसे बिगाड़ें। इन लोगोंने यहाँ तक किया कि पेशवाको यह सन्देह हो गया कि नानाका मेरी माताके साथ बुरा सम्बन्ध है। इन बातोंने उसके चित्तको सचमुच बिगाड़ दिया। लड़का तो था ही, स्वयं कुछ स्थिर न कर सका; धूर्तोंका जादू चल गया। एक दिन खड़े खड़े छत परसे माधवराव कूद पड़े। (बहुत लोगोंको यह सन्देह था और है कि वे गिरा दिये गये) और गिरते ही मर गये। समाचार पाते ही नानाने कहा " पेशवाके गिरनेके साथ ही, मराठा-साम्राज्य भी चकनाचूर हो गया।" उनका कहना अक्षरशः सत्य निकला। वही बाजीराव जिनका चलाया यह षड्यंत्र था, पेशवा हुए। इनमें ऐसा एक भी गुण न था जो ऐसे पदके अधिकारीमें होना चाहिये। इनकी दुर्बुद्धि, विषयप्रियता और कायरताने सचमुच साम्राज्य खो दिया और ये बिठूरमें अँगरेजोंकी दी हुई पेंशन खाते खाते मरे।

पर ये सब बातें पीछे हुईं। यहाँ केवल इतना ही दिखलाना है कि पेशवा नानासे बहुत प्रसन्न नहीं थे। उधर नाना माधवरावसे

बहुत प्रसन्न नहीं थे, और माधवराव भी नानाकी ओरसे निश्चिन्त न थे। ऐसी अवस्थामें उन्होंने स्वभावतः पेशवाको अपने पक्षमें लेना चाहा और पेशवाने भी इसी लिये उनपर अनुग्रह करना आरम्भ किया। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि माधवराव बाजीरावके पक्षके थे। यदि उनसे कोई उस पक्षकी बात करता तो वे उसकी न जाने क्या गति बनाते। यह भी निश्चित है कि वे नानाका व्यक्ति-गत अनिष्ट नहीं चाहते थे। इन दोनों प्रतिभाशाली व्यक्तियोंमें जो परस्पर विरोध था वह वैसा ही था जैसा कि आजकल भी प्रत्येक सभ्य राष्ट्रमें देखा जाता है; अन्तर केवल इतना है कि आजकल अधिकारसूत्र जनताके हाथमें है, इस लिये जनताको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया जाता है; उस समय अधिकारसूत्र तत्तद्देशके नरेशके हाथमें होता था इस लिये वे प्रसन्न किये जाते थे।

जो कुछ हो, नाना फड़नवीसको यह बात बुरी लगी। वे नहीं चाहते थे कि पेशवा मेरे दबावसे निकल जायँ। उन्होंने पेशवाको जहाँ तक हो सका रोकना चाहा, पर स्पष्ट रूपसे ऐसा करना असम्भव था। खेलमें, शिकारमें, सब जगह माधवराव पेशवाके साथ ही रहते थे और नाना स्वयं इन बातोंमें सम्मिलित नहीं हो सकते थे। एक दिन उन्होंने पेशवासे यहाँतक कहा कि मैं अपना पद त्यागनेको प्रस्तुत हूँ।

अस्तु, ये झगड़े कुछ दिनोंतक यों ही चले गये और यदि इनका निर्णय करना मनुष्यके हाथोंमें होता तो न जाने कब और क्या होता। पर निर्णय मनुष्यके हाथोंमें रहा ही नहीं। अभियोग एक ऐसे न्याया-लयमें चला गया जहाँसे अपील होती ही नहीं। १२ फरवरी सन् १७९४ (सं० १८५१) को पूनासे कुछ दूर वनौली नामक

स्थानमें माधवराव पञ्चत्वको प्राप्त हुए। मृत्युका कारण ज्वर बतलाया गया। पर कुछ लोग एक दूसरी ही कथा कहते हैं। उनका कहना है कि ११ फरवरीको रात्रिमें कुछ लोगोंने माधवराव और उनके साथियोंपर छापा मारा। इन लोगोंने इतनी वीरतासे उनका सामना किया कि वे लोग भाग गये पर माधवरावको गहरी चोट आई और उसीसे वे दूसरे दिन मर गये।

यह घटना असम्भव नहीं है। माधवरावके अनेक शत्रु थे। बहुत सम्भव है कि गुलाम कादिरके पक्षके किसी मुसलमानने ऐसा किया हो या इस्माईल बेगके साथियोंमेंसे किसीका यह काम हो। मराठोंमें भी कई उनके शत्रु थे; तुकोजी उनसे जल रहे थे; कई अच्छे कुल और थोड़ी आयके सर्दार इस लिये बुरा मानते थे कि अब सेनामें इन लोगोंको उच्चपद मिलना बन्द हो गया।

पर और लोगोंका यह मत नहीं है। उनका कहना है कि इस दुष्कर्मके प्रेरक नाना थे और इसका प्रमाण यह देते हैं कि इसमें नानाका प्रत्यक्ष लाभ था। अँगरेज ग्रन्थकारोंने भी दिल खोल कर नानाको बुरा कहा है। कीन माधवराव और नानाकी तुलना करते समय कहते हैं "The Nana was more than his equal in every respect, except, indeed, the important points of courage and character." सिवाय वीरता और चारित्र्यके, नाना उनसे हर बातमें बढ़कर थे।" एक अन्य स्थलमें उन्होंने नानाको unscrupulous कहा है। 'Unscrupulous' ऐसे मनुष्यको कहते हैं जो स्वार्थ-सिद्धिके लिये किसी बुरेसे बुरे साधनसे काम लेनेमें नहीं हिचकता। डफ माधवरावकी मृत्युके विषयमें नानापर अपना सन्देह इस प्रकार प्रकट करते हैं—"The death of

Madhojee was an event of great political importance as he was inimical to the over-grown acsendency of the Brahmins." "माधोजीकी मृत्यु राजनैतिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी घटना थी, क्योंकि वे ब्राह्मणोंकी अतिमात्र प्रधानताके विरोधी थे।"

ऐसी बातोंका उत्तर देना कठिन होता है, हम इतना ही कह सकते हैं कि जहाँ तक देखा गया है निष्पक्ष इतिहासवेत्ताओंकी सम्मति यही है कि नाना अत्यन्त सच्चरित्र और धार्म्मिक मनुष्य थे, इस लिये ऐसा विश्वास नहीं होता कि उन्होंने ऐसा निन्दित कार्य्य कराया होगा।

माधवरावको कोई लड़का न था और उन्होंने किसीको गोद भी न लिया था, परन्तु वे अपनी इच्छा प्रकट कर गये थे। उसके अनुसार उनके भाई तुकाजीके पौत्र दौलतरावको गद्दी मिली। इनके पिताका नाम आनन्दराव था। उस समय कुलमें और कोई दौलतरावसे अच्छा नहीं था। वे वयमें छोटे ही थे (उनकी अवस्था उस समय पन्द्रह वर्षसे अधिक न थी), पर माधवरावके साथ कई लड़ाइयोंमें रह चुके थे, इस लिये अनुभव पर्याप्त था। राज्य इतना विशाल था; प्रभाव इतना बड़ा था; सेना इतनी उत्तम थी; सेवक इतने योग्य और राजभक्त थे कि ऐसे भाग्यशाली कम नरेश होते हैं पर उन्होंने, जैसा कि आगे चलकर दिखलाया जायगा, सब खो दिया। अपनी वृद्धि होने पर भी, अनेक प्रलोभनोंके सामन पड़ने पर भी, माधवरावने महाराष्ट्र संघको टूटने न दिया। पर दौलतरावने थोड़े ही दिनोंमें उसे मिट्टीमें मिला दिया; जो सेना पराजयका नाम तक नहीं जानती थी उसके पुर्जे पुर्जे उड़ गये; जो राज्य इतना विस्तृत था, उसकी धज्जियाँ उड़ गईं; जो प्रभाव इतना प्रबल था वह लुप्त-प्राय हो गया और जो

स्वातंत्र्य इतना सुरक्षित था उसका अभाव हो गया। इन बातोंपर पीछे भी विचार किया जायगा। पर यहाँ यह विचार प्रकृत्या आता है कि किसी संस्थाको बनाना कितना कठिन कार्य्य है पर उसको बिगाड़ना कितना सहज है। बनानेके लिये माधवराव चाहिये; बिगाड़नेवाले दौलतराव सर्वत्र हैं।

१०—स्वभाव और राजनैतिक लक्ष्य।

मैं चाहता था कि माधवरावके शासनके विषयमें कुछ लिखता, पर खेद है कि मुझे पर्य्याप्त सामग्री न मिल सकी। उनका अधिकांश जीवन लड़ाई भिड़ाईमें ही बीता, इससे सम्भवतः शासन-सुधारके लिये उनको अधिक अवकाश मिला ही न होगा। शासनका क्रम वही रहा होगा जो उस समय प्रचलित था। ग्राम्य संस्थाएँ, जैसे पञ्चायतें, अपने गाँवोंका बहुत कुछ प्रबन्ध कर लिया करती होंगी और नगरोंमें जो प्रथा पहलेसे चली आती रही होगी उसीका अनुसरण होता रहा होगा। माधवरावके नियत किये हुए शासक या सूबेदार सामान्य देख-रेख रखते रहे होंगे।

मिस्टर टामस ब्रौटनकी लिखी 'Letters written in a Mahratta Camp' नामकी एक पुस्तक सन् १८१३ में छपी थी। ये मि० ब्रौटन दौलतराव शिंदेके दरबारमें अँगरेजी राजदूतके साथ थे। इन्होंने उस समयके सैनिक प्रबन्धके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। यह सब वृत्तान्त बड़ा रोचक है, पर यह स्मरण रखना चाहिये कि दौलतरावका दर्बार बिगड़ा हुआ दर्बार था। उसमें कई बातें ऐसी होती थीं जो माधवरावके समयमें कदापि न होती रही होंगी। एक उदाहरण लीजिये। सिपाहियोंको कई कई

महीनेतक वेतन नहीं मिलता था। जब उनका किसी प्रकार काम न चलता तो वे 'धरना' बैठते थे। 'धरना'का अर्थ यह हुआ कि वे खाना पीना छोड़कर महाराजकी 'डेवढ़ी'को घेर लेते और जब तक रुपया न मिलता वैसे ही बैठे रहते। इतना ही नहीं, स्वयं महाराज कभी कभी धरना बैठते थे। जब उनको किसीसे रुपया वसूल करना होता तो उसके डेरेपर किसीको 'धरना' बैठनेके लिये भेज दिया करते। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि 'धरना' बैठ बैठ कर साम्राज्य स्थापित नहीं किया जा सकता। सेनाके साथ भाँति भाँति-के लुटेरे रहते थे। पिण्डारी तो थे ही, एक सेना शोहदोंकी थी। शोहदाका अर्थ है बदमाश और ये लोग अपना नाम पूर्ण रूपसे सार्थक करते थे। लड़ना भिड़ना तो जो कुछ था वह था ही, पड़ाव भरके जूएका प्रबन्ध इनके सपुर्द था। जहाँ जहाँ पड़ाव पड़ता था एक दैवी प्रकोप पड़ जाता था; आसपासके खेत रौंद डाले जाते, पशु पकड़ लिये जाते और घर मकान गाँव लूट लिये जाते थे। इस आपत्तिसे बचनेका यही उपाय था कि वहाँकी प्रजा या उनका राजा, महाराज या उनके बीनीवाला (वह अफसर जो पड़ावका प्रबन्ध करता था) की पूरी पूजा कर दे।

ये बातें सभी मराठा सेनाओंके साथ थीं पर इनकी उग्रता नरेश पर निर्भर थी। दौलतरावके स्वभावने इनको निरंकुश कर रक्खा था; माधवरावके शासन-कालमें इनका रूप मृदु रहा होगा। दूसरे हम ऊपर कह चुके हैं कि डि बॉयनका इन बातोंमें बहुत कुछ हाथ था और इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बहुत सुधार कर दिया था।

साधारण देश-प्रबन्धके विषयमें भी ऐसा ही अनुमान किया जा सकता है। शासनके रूपमें बहुत ही कम परिवर्तन हुआ होगा।

परन्तु उसकी क्रूरता बहुत कुछ घटा दी गई होगी । प्रजाको अनावश्यक कष्ट कभी न दिया जाता रहा होगा। वह युद्धका समय था, पर ऐसे समयमें प्रजाको जितना सुख देना सम्भव है उतना माधवरावकी प्रजाको निःसन्देह मिलता रहा होगा। इस सम्बन्धमें कीनके ये वाक्य स्मरण रखने योग्य हैं:—

"Ahalya Bai resided at Indore—still the capital of the Holkar dominions, a short distance south of Sindhia's Malwa capital of Ujjain; and it is believed that at no period in the history of that fertile country have the people lived in more peaceful or prosperous enjoyment of their natural advantages or had a more truly popular government than under these two benevolent and able rulers."

"अहल्याबाई होल्कर राज्यकी राजधानी इन्दौरमें रहती थीं। यह नगर शिंदेके मालवा प्रान्तकी राजधानी, उज्जैनसे कुछ दूर पर दक्षिणकी ओर है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस उर्वर प्रदेशकी प्रजाको अपने प्राकृतिक सुभीतोंको शान्तिपूर्वक और समृद्धियुक्त उपभोग करनेका या वस्तुतः सर्वप्रिय शासनमें रहनेका कभी इतना अच्छा सुयोग नहीं प्राप्त हुआ था जितना कि इन दोनों (अहल्या बाई और माधवराव) सुयोग्य और दयालु नरपतियोंके समयमें प्राप्त हुआ।"

राजतंत्र देशोंमें ऐसा होना स्वाभाविक है। जहाँ पर सारा अधिकार एक व्यक्तिके हाथमें है, वहाँ उसके सभी आश्रित उसका अनुकरण करना चाहेंगे। क्यों कि उनकी अभिवृद्धिका यही एक मात्र साधन है। उनके स्वामीका स्वभाव उन सबके कार्य्योंको न्यूनाधिक

रूपसे रञ्जित कर देगा और उसका व्यक्तित्व उसकी अधि-वासिनी समस्त संस्थाओंमें व्यापक होगा। हमको माधवरावके स्वभावका जो पता चलता है उससे हम कह सकते हैं कि कीनकी उपर्युक्त प्रशंसा अयुक्त न होगी।

माधवरावके स्वभावको जाननेके लिये हमारे पास बहुत कुछ सामग्री है। बहुत कुछ परिज्ञान तो हम उनके कामोंसे ही कर सकते हैं। क्यों कि स्वभाव मनुष्यके कामोंका प्रधान प्रेरक होता है इसके अतिरिक्त उनके समसामयिकोंके कई लेख-बद्ध प्रमाण हैं। माधवरावको अँगरेज, मुसल्मान, मराठा, फ्रांसीसी सबसे काम पड़ता था और सबने ही उनके विषयमें कुछ न कुछ लिखा है।

इन सबका दृष्टि-कोण एक नहीं हो सकता। माधवराव मुसल्मानोंके शत्रु थे, अँगरेजोंके प्रतिद्वन्द्वी थे, मराठोंके नेता थे। जिन फ्राँसवालोंने इनके विषयमें कुछ लिखा है उनके ये अन्नदाता थे और मराठोंमें भी कई इनके विरोधी थे। पर जब हम सब प्रमाणोंको एकत्र करके उनकी तुलना करते हैं तो एक विचित्र बात निकलती है। माधवरावके असाधारण गुणोंने सबके मुखसे यह कहलवा दिया है कि वे 'महापुरुष' थे। हम इस शब्दके वाच्यार्थ पर किञ्चिद्विस्तारसे विचार करना चाहते हैं, पर इतने भिन्नार्थ व्यक्तियोंका इस विषयमें सहमत होना कोई सामान्य बात नहीं है।

हमारा यह तात्पर्य्य कदापि नहीं है कि माधवराव पूर्णतया निर्दोष प्रकृतिके मनुष्य थे। ऐसे मनुष्य, जिनमें कोई दोष न पाया जाय, पृथ्वी पर होते ही नहीं। इसके अतिरिक्त देश-कालभेदसे गुण-दोषादिका निर्णय करना चाहिये। परन्तु हम इतना कह सकते हैं कि माधवराव निःसन्देह उन लोगोंमेंसे थे जिनमें गुणोंकी मात्रा, दोषों-

की मात्रासे अधिक होती है, जिनके गुण उत्कृष्ट कोटिके होते हैं और जिनके दोष भी स्वार्थप्रेरित नहीं होते। उनके गुणोंमें-से पहला गुण जो प्रशंसनीय था ऐसा है जो इस परिस्थितिके लोगोंमें बहुत ही कम पाया जाता है। वे अत्यन्त सीधे सादे और सुखपराङ्मुख थे। ऐसे उच्चपदके अधिकारी होकर वे शारीरिक सुखोंसे दूर ही रहते थे, जैसा कि एक लेखकने कहा है—"he was of a manly simplicity of character which led him to despise equally the trappings of state and the allurements of luxury." "उनका चारित्र वैसा सरल था जैसा कि पुरुषोंका होना चाहिये और इसी लिये वे दिखावटी ठाट बाट और विषय-भोगके प्रलोभनोंसे घृणा करते थे।" इसीका यह फल था कि उनमें विद्यानुराग भी था। जिस मनुष्यके जीवनका अधिकांश लड़ाई-भिड़ाईमें ही गया हो उसे पढ़ने-लिखनेका समय कब मिला होगा। पर बात यह है कि जो समय अन्य राजे महाराजे विषय-भोगमें लगाते हैं उसका उन्होंने उपयोग किया, इसी लिये मराठी और हिन्दुस्तानी भाषाओंके साथ साथ उन्होंने फारसी पढ़नेका भी समय निकाल लिया। गणितका भी उनको बहुत ही अच्छा ज्ञान था।

उनकी दृढ़ प्रतिज्ञताके अपर कई उदाहरण दिये जा चुके हैं। वे जो लक्ष्य स्थिर करते थे बहुत ही सोच विचार कर करते थे, परन्तु जब एक बार लक्ष्य स्थिर कर लेते थे तो उसे दृढ़तासे पहुँचनेका प्रयत्न करते थे। यह सदाका नियम है कि सत्पुरुष विघ्नोंकी परवाह नहीं करते, प्रत्युत विघ्नोंसे और भी उत्तेजित होते हैं। "अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।" इसका सबसे बड़ा उदाहरण वह है जो पाँचवें अध्यायमें दिया जाचुका है। माधवरावने यह निश्चित कर लिया था

कि दिल्लीसे मुसल्मानोंका प्राधान्य हटाना होगा और हिन्दुस्तानमें फिरसे हिन्दुओंका प्रभाव जमाना होगा। यह काम सहज नहीं था। कई बरस तक तो पेशवाईके झगड़ोंके कारण वे कुछ कर ही न सके; जब अवकाश भी मिला तो शत्रुओं और बाधकोंकी कोई कमी न थी—मुसल्मान शक्तियाँ सभी एक हो गई और राजपूतोंने भी उनका ही साथ दिया। पर उन्होंने अपना धैर्य्य न छोड़ा और समय पाकर अपना उद्देश्य पूरा किया। इसको कुछ लोग vindictive-ness कहते हैं। Vindictive उस मनुष्यको कहते हैं जिसे बदला लेनेमें विशेष आनन्द आता है। माधवरावकी प्रकृतिको ऐसा बतलाना भूल है। जब डि बॉयनसे हार कर होल्कर माल्वा लौटे तो उन्होंने उज्जैनको लूट लिया। माधवराव चाहते तो इसके लिये उन्हें समुचित दण्ड दे सकते थे। पर उन्होंने इस बात पर उसी प्रकार ध्यान न दिया जैसे कोई बच्चोंके चिबिल्लेपनकी ओर ध्यान नहीं देता। ऐसा व्यक्ति vindictive (विन्डिक्टिव) नहीं कहा जा सकता। बात यह है कि मुसल्मानोंका विरोध करना एक दृढ़ सङ्कल्पकी बात थी। माधवरावकी बुद्धिमें यह बात उत्तम और उपयोगी प्रतीत हुई; बस उन्होंने इसकी सिद्धिके लिये अपना सारा मानसिक बल लगा दिया। इसमें उनका व्यक्तिगत लाभ नहीं था, सिद्धान्तकी बात थी।

स्वयं कई अँगरेज लेखकों का मत है कि "he was guided in his conduct by principles drawn from his own observation and judgment." "उनका व्यवहार उन सिद्धान्तोंसे प्रेरित होता था जिनको वे अपने अनुभव और विचारसे निश्चित करते थे।" फिर यह कोई अस्वाभाविक भाव भी नहीं था। इसी भावने मराठोंका

उत्थान करवाया था । यही भाव महाराज शिवाजीका मूल मंत्र था । इसके लिये माधवरावको दोषी ठहरना अन्याय है । यह कहा जाता है कि उनको क्रोध जल्दी आता था । यह बात हो सकती है, पर यह कोई अक्षम्य अपराध नहीं है, कमसे कम हम शीघ्र क्रुद्ध हो जानेवालेको 'vindictive' या चिर-द्वेषी नहीं कह सकते। इतना ही नहीं, कौन कहते हैं कि जब वे किसीको दण्ड भी देते थे तो इस बातका ध्यान रखते थे कि उसे अनावश्यक पीड़ा न हो ।

उनकी कृतज्ञता भी स्मरणीय थी । राना खाँ भिस्तीका वृत्तान्त हम दे ही चुके हैं । सामान्य भिश्तीसे माधवरावने उसे एक बड़ा सेनापति और श्रीमान् पुरुष बना दिया । उसे वे सदैव भाई कहते थे । अहल्याबाई उनको मानती थीं । इसी कारण उन्होंने तुकोजीकी उद्दण्डताको क्षमा कर दिया । ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं । अपने विदेशी सेनापतियोंका वे कितना सम्मान करते थे यह हम लिख ही चुके हैं । गुणकी बड़ी भारी परीक्षा गुणज्ञतासे होती है । जो सच्चा गुणी है वह दूसरोंके गुणोंको पहिचान और सम्मानित कर सकता है । माधवरावमें यह बात पूर्ण रूपसे पाई जाती थी । इतने बड़े कार्य्यका सूत्रधार सब कामोंको आप नहीं देख भाल सकता, पर योग्य सहायकोंका चुनाव सहज बात नहीं है । माधवरावमें यह योग्यायोग्य विवेचनकी शक्ति थी । उनका चुनाव सदैव उत्तम होता था । वे चाहे कहीं रहे उनके सभी प्रान्तीय शासक अपना कार्य वैसे ही करते थे जैसा कि माधवरावके प्रत्यक्ष निरीक्षणमें करते । सेनाके लिये डि बॉयनसे योग्य व्यक्ति मिलना कठिन था ।

कार्यकी सफलताके लिये केवल योग्य मनुष्य चुन लेना ही पर्य्याप्त नहीं है : उस चुने हुए मनुष्य पर विश्वास करना चाहिये और यदि

उससे कभी कोई भूल होजाय तो क्षमा करना चाहिये। माधवरावमें यह गुण भी था। मि० कीन कहते हैं–"he was an excellent and indulgent master unforgiving only towards officers who showed cowardice in battle. To all others his favour was equal, solely apportioned to merit without regard to creed, caste or colour." "वे बड़े ही श्रेष्ठ और कृपालु स्वामी थे। वे केवल उन्हीं अफसरोंको क्षमा नहीं करते थे जो युद्धमें कायरता दिखलाते थे। और सब पर वे समकृपा रखते थे और जाति वर्ण या संप्रदायको न देखकर केवल योग्यतापर ध्यान देते थे।" डि बॉयन आदि उनके सुसङ्गत व्यवहार, सत्यभाव और दृढ़सङ्कल्प (consistency of conduct, good faith and tenacity of purpose) पर मुग्ध थे।

ऐसे स्वामीकी सेवा सभी सच्चे लोग तन-मनसे करते हैं। इन्हीं सब बातोंको देख कर कीनने कहा है—"Amongst Asiatic public men, at least, there is no other name that can be fairly matched with that of Madhav Sindhia; and even to these he was superior alike in the scale of his success and in the qualities of his head and heart." "कमसे कम एशियाके राजनीतिज्ञोंमें इनके सिवाय ऐसा कोई नाम नहीं है जिसकी तुलना माधवराव शिंदेके साथ हो सके और इन दोनोंसे भी वे बढ़कर थे। उनको सफलता भी अधिक हुई और उनके मस्तिष्क और हृदयके गुण भी इनसे श्रेष्ठतर थे।"

उपर्युक्त वाक्यमें 'इनके' और 'इन दोनोंसे' मिर्जा नजफखाँ और नजीबुद्दौलाके लिये लिखा गया है। कीनकी सम्मतिमें एशियामें

यही दोनों ऐसे राजपुरुष उस समय थे जो सचमुच इस नामसे पुकारे जाने योग्य थे। शेष या तो महामूर्ख और बुद्धिहीन होते थे (यद्यपि ऐसे भी कम थे) या महास्वार्थी, नीचस्वभाव, धूर्त ।

हम कीनके वाक्यसे बहुत कुछ सहमत हैं । वक्तव्य केवल इतना है कि 'एशिया' का नाम लेकर उन्होंने व्यर्थ पक्षपातको स्थान दिया है। धूर्तताका एशियाने ही ठेका नहीं ले रक्खा है; यदि वे पक्षपातहीन होकर, योरपके या अपने स्वदेश इंग्लैण्डके ही इतिहासको देखते, इतनी दूर न जाकर अपने देशवासियोंके भारतीय कार्य्योंका ही वृत्तान्त पढ़ते, तो वे इन शब्दोंको कदापि न लिखते ।

उनके ऊपर कीनने एक बड़ा दोष लगाया है–" his political conduct was not always very scrupulous" "अर्थात् उनका राजनैतिक व्यवहार सदैव न्याय्य नहीं होता था।" यह दोष अकेले कीनका ही लगाया हुआ नहीं है; कई और लोग भी इसी पक्षमें हैं । इसलिये मैं यहाँपर उन उदाहरणोंपर पृथक् पृथक् विचार करना चाहता हूँ जो इस मतकी पुष्टिमें दिये जाते हैं ।

(१) पहला प्रमाण यह दिया जाता है कि माधवरावने पहले तो राघोबा ऐसे दुष्टको पेशवा बनाना चाहा और फिर जब सहायता देनेका समय आया तो उसका साथ छोड़ दिया। मुझे यह हेतु सुनकर हँसी आती है। मेरी समझमें इससे माधवरावकी और प्रशंसा होती है। उस समय पेशवाईके दो अधिकारी थे। एक तो राघोबा, दूसरे बालक माधवराव (द्वितीय)। बालकका पक्ष उस समय बहुत ठीक न था। बहुत लोगोंको यह सन्देह था कि वह नारायणरावका पुत्र नहीं है, प्रत्युत नानाका पुत्र है और नाना फड़नवीसका महारानीसे

अनुचित सम्बन्ध है। ऐसी अवस्थामें राघोबाका ही पक्ष लिया जा सकता था, क्योंकि वे स्वतः चाहे कैसे ही क्यों न हों, गद्दीके सच्चे अधिकारी तो थे। पर जब उनको सच्ची बातका पता लग गया और अहल्याबाईने भी अनुरोध किया तो उन्होंने दुराग्रह न करके सत्यका पक्ष ले लिया। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि यदि अँगरेजोंकी भाँति माधवराव भी राघोबाके पक्षमें पड़े ही रहते तो नानाकी एक न चलती और अधर्म्मकी जीत हो जाती। समझमें नहीं आता कि लोगोंने इस सद्गुणको दुर्गुण कैसे मान लिया।

(२) दूसरा उदाहरण जो दिया जाता है उसमें कुछ न्याय्य आक्षेप है। हम पाँचवें अध्यायमें लिख चुके हैं कि जब माधवरावने आगरेका किला घेर रक्खा था उस समय मिर्जा शफीके भाई जैनुल आबिदीनने अफ्रासियाबखाँको मार डाला। इसमें सन्देह नहीं कि उसने अपने भाईके खूनका बदला लिया पर अफ्रासियाबके मरनेसे माधवरावको भी लाभ हुआ, क्यों कि दिल्लीमें उनका मार्ग निष्कण्टक हो गया। इससे कुछ लोग यह अनुमान करते हैं कि स्यात् माधवरावने ही उसे मरवा डाला हो। इसका उत्तर डफने दिया है। उनका कहना है कि एक तो इसका कोई प्रमाण नहीं है, दूसरे उस समयके लोगोंमेंसे किसीने भी उन पर सन्देह नहीं किया। हाँ, एक भूल उन्होंने निःसन्देह की। जैनुल आबिदीन अफ्रासियाबको मारकर माधवरावकी सेनामें आकर छिप रहा, पर उन्होंने उसे किसी प्रकारका दण्ड नहीं दिया। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह उनका अपराध था। खूनीको यों छोड़ देना शरणागतरक्षा नहीं है। कमसे कम उसे निकाल देना चाहिये था। उनके ऐसा न करनेका हम यही कारण अनुमान कर सकते हैं कि कुछ राजनैतिक कारणोंने उन्हें चुप रक्खा।

इस आकस्मिक घटनासे उनका लाभ हुआ सही; तदुपरान्त उन्होंने बातको दबा रखना ही उचित समझा। इस विषयमें वे दोषी निःसन्देह हैं, पर उतने नहीं जितना कि वे उस दशामें माने जाते जब उनकी प्रेरणासे ही खून होता।

(३) तीसरा उदाहरण यह दिया जाता है कि जिन दिनों गुलाम कादिर सम्राट् शाह आलमके साथ इतने अत्याचार कर रहा था वे मथुरामें चुपचाप बैठे रहे। यह दोष भी मेरी समझमें बे-सोचे-समझे लगाया जाता है। माधवराव मथुरामें चुपचाप बैठे रहे, इसमें सन्देह नहीं; पर वे जान बूझकर और अपनी इच्छासे नहीं बैठे रहे। उन्होंने कई बार सम्राट्को सहायता देनी चाही थी, पर सम्राट्ने बराबर उनका तिरस्कार किया था। शाह आलम बराबर चुपके चुपके इनके शत्रुओंकी बात मानते रहे और इनको धोखा देते रहे। ऐसी अवस्थामें ये इस बातकी आशा नहीं कर सकते थे कि वे इस बार मेरी बात सुन लेंगे। दूसरे, उनकी सेनाएँ कई झगड़ोंमें फँसी हुई थीं। तीसरी और सबसे बड़ी बात यह थी कि इनको न तो इन अत्याचारोंका पता था न अनुमान हो सकता था। जैसा कि स्वयं कीनने एक स्थलमें कहा है। गुलाम कादिर दिल्ली साम्राज्यका एक बड़ा अमीर और सर्दार था; यह कौन कह सकता था कि वह ऐसे ऐसे काम करेगा। हाँ, जब उनको ये बातें ज्ञात हुईं तो उन्होंने उसे दण्ड देने और शाह आलमको साहाय्य देनेमें कोई कसर न छोड़ी।

(४) चौथी बात जो कहा जाती है वह भी हास्यजनक है। वे कहते हैं कि पहले तो माधवरावने 'crooked way' कुटिल रीतिसे कम्पनीसे रुपया बसूल करना चाहा और फिर घबराकर चटसे क्षमा

माँग ली। मैं नहीं समझता कि माधवरावने क्या कौटिल्य किया। कीन आदि जो कुछ बतलाते हैं वह निस्सार है। माधवराव सम्राट्के नामसे कर माँगते थे। कर माँगना ये लोग भी मानते हैं कि न्याय्य था, फिर सोचनेकी बात है कि वह माँगा किसके नामसे जाता। माधवराव अपने नामसे किस अधिकारसे माँगते ? हाँ उनको कम्पनीकी ओरसे जो उत्तर दिया गया वह निःसन्देह कुटिल था। रही क्षमा माँगनेकी बात, सो उसका कारण भी हम बतला चुके हैं। माधवराव उस समय स्वस्थचित्त नहीं थे। वे घरेलू झगड़ोंमें पड़े थे, नहीं तो न जाने क्या होता। अँगरेज लेखक कहते हैं कि वे अँगरेजोंसे डरते थे। मेरी समझमें यह इन लेखकोंकी निष्प्रमाण आत्मप्रशंसा है। माधवराव कभी कभी अँगरेजी सिपाहियोंकी प्रशंसा करते थे पर यह उनकी गुणग्राहकताका द्योतक है; भयका नहीं।

इस विषयमें और विस्तारसे लिखनेकी आवश्यकता नहीं है । जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है वही मेरे इस मन्तव्यके समर्थन करनेके लिये पर्य्याप्त है कि सामान्य मानव-गुणोंसे अस्पृष्ट न होते हुए भी माधवराव एक असामान्य गुण-शीलसम्पन्न व्यक्ति थे। ऐसे ही लोग बड़े बड़े साम्राज्योंके संस्थापक हो सकते हैं और बड़े बड़े उद्देश्योंको पूरा कर सकते हैं।

माधवरावके जीवनका उद्देश्य क्या था ? यह भी एक बड़ा विवादास्पद प्रश्न है। एक ओर तो कीन आदि कहते हैं कि उनका लक्ष्य केवल इतना था—"to extend and preserve the authority of the Emperor (*i. e.* of himself), in those territories which still, remained under the direct administration of the Empire." "जो प्रान्त अब भी साम्राज्यके स्वतः शासनमें रह

गये थे, उनमें सम्राट्के (अर्थात् सम्राट्के नामसे, अपने) अधिकारका प्रचार और संरक्षण करना।"

इस पक्षके लेखकोंने यह तो निश्चय कर ही लिया है कि माधवराव अँगरेजोंसे डरते थे; ऐसी दशामें न तो वे अँगरेजी प्रान्तोंकी ओर दृष्टिपात कर सकते थे, न अँगरेजोंके मित्रों, जैसे नब्बाब--वजीर, के देशोंपर। जो प्रान्त स्वयं पेशवाके शासनमें थे या होल्कर आदि मराठा सर्दारोंके शासनमें थे, उन पर कुदृष्टि डालना मूर्खता थी, क्योंकि इस आपसके कलहसे उनको कदापि लाभकी आशा नहीं हो सकती थी। इस लिये माधवरावका कार्य्यक्षेत्र वही प्रदेश हो सकता था जो नामतः अब भी मुगल-साम्राज्यमें था। बस सम्राट्को अपने हाथका खिलौना बनाकर उनके नामपर इस विस्तृत भूभागपर शासन करना ही माधरावका उद्देश्य हो सकता था।

दूसरा पक्ष कुछ और ही कहता है। कर्नल मैलेसन लिखते हैं—
" It must never, be lost sight of that the great dream of Madhaji Sindhia's life was to unite all the native powers of India in one great confederacy against the English. In this repect he was the most far-sighted statesman that India has ever produced. It was a grand idea, capable of realisation by Madhaji, but by him alone, and which, but for his death, would have been realised." "यह कभी न भूलना चाहिये कि माधोजी शिंदेके जीवनका बड़ा उद्देश्य यह था कि भारतके सब देशी राष्ट्रोंका एक संघ अँगरेजोंके विरुद्ध बनाया जाय। इस दृष्टिसे, वे भारतके सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे। यह एक अत्यन्त महान विचार था

पर इसको माधाजी ही पूरा कर सकते थे और यदि उनकी मृत्यु न हो जाती तो पूरा हो जाता।"

ये बड़े महत्त्वके शब्द हैं और मेरी समझमें अक्षरशः सत्य हैं। किसी व्यक्ति विशेषके हार्दिक भाव क्या थे, यह जानना सरल नहीं है। प्रायः गम्भीर प्रकृतिके मनुष्य अपने भावोंको गुप्त रखते हैं। इस लिये हमको उनके कामोंसे उनके भावों और विचारोंका अनुमान करना पड़ता है। इस प्रकार जब मैं अनुमान करनेका प्रयत्न करता हूँ तो मुझे मैलेसनके वाक्य सत्य परन्तु असम्पूर्ण प्रतीत होते हैं।

जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, मराठा जातिके अभ्युत्थानका मूलमंत्र था यवनोंका बहिष्कार। इसी युद्धनादका आश्रय लेकर मराठोंने मुगलोंका सामना किया था। यही भाव छत्रपति शिवाजी अपने उत्तरवर्तियोंके लिये छोड़ गये थे। बीच बीचमें कई बार यह मन्द हो गया पर सभी योग्य मराठा सर्दारोंमें इसका सञ्चार हो आता था। प्रथम तीनों पेशवाओंकी इस पर दृढ़ निष्ठा थी; प्रथम माधवरावकी इस पर दृढ़ आस्था थी। इस लिये हमारे चरित्र-नायक माधवरावमें इस भावका होना कोई विचित्र बात नहीं है। फिर ये पानीपतकी अभागी लड़ाईमें सम्मिलित हो चुके थे; केवल इनके भाई ही नहीं प्रत्युत महाराष्ट्रके अनेक वीराग्रगण्य योद्धाओंका ध्वंस इनके सामने हुआ था। धीर पुरुष ऐसी बातोंको शीघ्र नहीं भूलते। हम पाँचवें अध्यायमें लिख चुके हैं कि उन्होंने इसी आशयके वाक्य एक बार कहे भी थे।—"देशकी इतनी दुर्दशा हुई है; मेरे भाई और भतीजे मारे गये हैं; मेरा सदाके लिये अङ्गभङ्ग हो गया है; मैं इसके लिये बदला लेना चाहता हूँ........फिर भी मैं पेशवाका सेवक हूँ। यदि वे इस सन्धिको स्वीकार करते हैं तो मेरा कर्तव्य यही है कि उनकी आज्ञाका पालन करूँ।" अतः भारतसे

मुसलमानोंको निकालना था, यों कहिये कि, उनके हाथसे राजनैतिक प्राधान्य छीन लेना उनका एक प्रधान उद्देश्य हो गया। इसमें वे काल पाकर कृतकृत्य हुए। हिन्दुस्तानमें ऐसी कोई मुसलमान शक्ति न रही जो उनका सामना कर सकती। इस कार्य्यमें उनको राजपूतोंका भी विरोध करना पड़ा। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि राजपूत राष्ट्र तो मुगलोंके पुराने मित्र थे। उदयपुरवालोंने भी उनका ही साथ दिया। इसी लिये माधवरावको इनसे भी लड़ना पड़ा। पर भरतपुरके जाट मुसलमानोंके शत्रु थे, इस लिये माधवराव प्रायः बराबर उनके पक्षपाती रहे।

हिन्दुस्तानपर अधिकार जम जानेके पीछे, यह विचार उत्पन्न हुआ कि अब इस मुगल साम्राज्यका क्या किया जाय? उसको नाश करके स्वयं उसपर राज्य करना कोई कठिन बात न थी, पर ऐसा करनेसे माधवरावके मूल उद्देश्यमें बाधा पड़ती थी। वह मूल उद्देश्य केवल मुगलोंका ध्वंस करना न था, प्रत्युत भारत भूमिका विदेशी शासनसे मुक्त करना। मुगलोंका बल तो टूट गया पर अब विदेशी अँगरेजोंका बल बढ़ रहा था। कई देशी नरेशोंकी अदूरदर्शिताने इनको बहुत कुछ महत्त्व दे रक्खा था। घरेलू झगड़ोंने इनको भारतके राजनैतिक जगत्‌में एक प्रधान स्थान दे दिया था। उसका ये लोग अनुचित लाभ उठा रहे थे। लखनऊ और हैदराबादके मुसल्मानी राज्य इनके सहारे ही सँभले हुए थे और यह धीरे धीरे अपने हाथ पावँ फैलाते ही जा रहे थे। इनके विचारोंकी परीक्षा लेनेहीके लिये माधवरावने सम्राट्‌के नामसे बङ्गालका कर माँगा था। जो उत्तर मिला उसने सारा भ्रम दूर कर दिया।

इस परिस्थितिको विचार कर ही माधवरावने सम्राट्‌के पदको बनाये रखना उचित समझा। इसी लिये उन्होंने पेशवाको सम्राट्‌के

हाथसे वकीलुल्मुल्ककी उपाधि दिलवाई। यह कोई अपमानकी बात न थी। महाराष्ट्रके वास्तविक स्वामी महाराजा सातारा थे, जो शिवाजी-के वंशज थे। यदि उनको मुगलोंसे कोई उपाधि दिलवाई जाती तो सचमुच अपमानकी बात होती, पर पेशवा, सब अधिकारोंके होते हुए भी, साताराधीशके सेवक थे। इस लिये उनको दिलवानेमें महा-राष्ट्रका निरादर नहीं हुआ। लाभ यह हुआ कि जिन लोगोंके हृदयमें अब भी सम्राट्के नामकी प्रतिष्ठा थी वे सब पेशवा (या यों कहिये कि उनके नायब, माधवराव) के पक्षमें हो गये। आपसके बैर विरोध मिटाने और अपनी परिस्थिति दृढ़ करनेके लिये ही माधवरावको पूना आकर वह सब दर्बारोंका तमाशा करना पड़ा। आपसकी फूट मिटानेके लिये वे सदैव सयत्न रहते थे। होल्करको जो उन्होंने क्षमा कर दिया उस-का यह भी एक कारण था। इतना ही नहीं, अपनी बुद्धिमत्ताका उन्होंने एक और भी परिचय दिया। वे मुसलमानोंके विरोधी थे, पर यह भी समझते थे कि इस समय मुसलमानोंसे बढ़कर भारतको अँगरेजोंका ही भय है। यह समझकर उन्होंने यह भी न होने दिया कि अँगरेज भार-तकी मुसल्मान शक्तियोंको नाश करके अकेले अकेले लाभ उठावें। इसी लिये जब टीपू सुल्तानसे लड़ाई होनेवाली थी तो उन्होंने अँगरे-जोंका साथ देना चाहा, पर अँगरेजोंने यह स्वीकार न किया। उनको माधवरावका विश्वास न था। डफ, कीन आदि अँगरेज ग्रन्थकार भी मानते हैं कि उस समय अँगरेजी गवर्नमेण्ट माधवरावकी वृद्धिको सचिन्त और सशङ्क, दृष्टिसे देखती थी, पर माधवरावने भी इनको मनमानी न करने दिया। अँगरेज लोग चाहते थे कि कम्पनी, मराठों और निजाम हैदराबादमें टीपूके विरुद्ध एक सन्धि हो जाय। उसका फलितार्थ यह होता कि यदि इनमेंसे एक पर भी टीपू आक्रमण

करता तो शेष दोनोंको सहायता करनी पड़ती; इसी प्रकार यदि इन-मेंसे एक भी टीपूपर आक्रमण करते तो शेष दोनोंको उसकी सहायता करनी पड़ती। माधवरावने देखा कि इसमें सर्वथा अँगरेजोंका ही लाभ होगा। उनसे टीपूसे आये दिन लड़ाई लगी रहती है और निजाम उनके आश्रित मित्र ही हैं; मराठे व्यर्थ बीचमें पड़कर विदेशियोंके लाभ और एक देशी राष्ट्रके विध्वंसके साधन होंगे। इसी लिये उन्होंने इस सन्धिका विरोध किया और उसे न होने दिया।

इन बातोंसे स्पष्ट है कि मैलेसनका कहना अत्युक्ति नहीं है। यदि माधवरावके जीवनकी घटनाओंका सिंहावलोकन किया जाय तो यह बात समझमें आ जाती है कि वे सदैव इस प्रयत्नमें लगे रहते थे कि भारतसे विदेशी शासन उठ जाय। यह विजाति-द्वेष नहीं है, इसका नाम स्वदेश-प्रेम है।

एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि उनका यह उद्देश्य सिद्ध हो जाता और वे अँगरेजोंके राजनैतिक बलको नष्ट कर सकते तो फिर क्या करते? इस विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि जहाँ तक मैं समझता हूँ पहले निजाम और नव्वाब-वजीरकी बारी आती। इनमें स्वयं तो कुछ बल था हीं नहीं, शीघ्र ही ठण्डे हो जाते। इनके पीछे मैसूर राज्य टीपू (या उसके वंशजों) के हाथसे निकलता। तबतक साम्राज्यका नाम चला जाता और दिल्लीकी गद्दीपर कोई न कोई मुगल बैठाया रहता। फिर धीरेसे यह आड़ भी अनावश्यक प्रतीत होने लगती और भारतका साम्राज्य मुगल वंशके हाथसे निकलकर पेशवा वंशमें आजाता।

परन्तु यहाँ पर फिर प्रश्न हो सकता है कि इसके आगे क्या होता? अब उत्तर देना और भी कठिन है। सम्भव है कि माधवराव

पेशवाके सबसे बड़े सर्दार बननेसे सन्तुष्ट रह जाते; सम्भव है कि वे स्वयं पेशवा बनना चाहते; सम्भव है वे भारतके एकच्छत्र सम्राट् बनना चाहते। उस अवस्थामें क्या होता, यह कौन कह सकता है। बहुत सम्भव यह है कि स्वयं माधवरावने भी इन प्रश्नों पर समीचीन विचार न किया हो। अतः इन प्रश्नोंको उठाना व्यर्थ है। हमको उनके मूल उद्देश्यमें कोई सन्देह नहीं है और हम मुक्तकण्ठसे कह सकते हैं कि, जैसा मैलेसनने कहा है, " It was a grand idea " " यह अत्यन्त महान् विचार था " और जिस मनुष्यके ऐसे विचार होते हैं वह सबका श्रद्धेय होता है।

अन्तमें हम इस अध्यायको कीनके उन शब्दों पर समाप्त करते हैं जिनके सत्य होनेमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। " The man of whom we treat was an Indian ruler of exceptional capacity in times of exceptional difficulty " " जिस मनुष्यका हम वर्णन करते हैं वह असाधारण कठिनाइयोंके समयमें एक असाधारण योग्यताका भारतीय नरेश था। " हमारे वक्तव्योंमें बहुतसे ऐसे होंगे जिनके विषयमें मतभेद होगा, क्यों कि यह असम्भव है कि सबका दृष्टिकोण एक ही हो, पर हाँ, इस बातमें स्यात् किसीको मतभेद न होगा कि माधवराव ऐसे व्यक्ति कम देखनेमें आते हैं और उनके पीछे भारतमें कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति हुआ होगा।

११—माधवरावकी मृत्युके उपरान्त ।

माधवरावकी जीवनी अब समाप्त हो गई, परन्तु उनकी मृत्युके पीछे जो कुछ हुआ उसका भी संक्षिप्त वृत्तान्त देना आवश्यक है। उससे हमको माधवरावके चरित्रको समझनेमें सहायता मिलेगी। इस वृत्तान्तमें पेशवा-वंश, होल्कर-वंश और शिंदे-वंशका कुछ वृत्तान्त देना आवश्यक है। इसीमें भारतका सारा आवश्यक इतिहास आ जायगा।

(क) पेशवा-वंश ।

यह हम कह चुके हैं कि द्वितीय माधवराव पेशवा शनिवार बाड़ेके आँगनमें कूद कर मर गये। उनके पीछे राघोबाके पुत्र द्वितीय बाजीराव पेशवा हुए। इनके गद्दी पर बैठनेके समय कुछ उपद्रव उठा। उसमें दौलतराव शिंदेने अच्छा अवसर पाया। उन्होंने नाना फड़नवीसको पकड़वा लिया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली। नानाकी बड़े दुःखसे मृत्यु हुई। इधर दौलतराव और बाजीरावमें झगड़ा खड़ा हुआ। अस्तु, अँगरेजोंकी सहायतासे बाजीरावने अपनी गद्दी स्थिर की, पर इनके साथ भी उनकी मैत्री न निभ सकी। सन् १८१७ (सं० १८७४) में ये अँगरेजोंसे लड़ पड़े, पर लड़ते भी न बना। १ जनवरी १८१८ को कोरेगाँवकी लड़ाई

हुई। इसका वृत्तान्त जनवरी (१९१८) के हिन्दी चित्रमय-जगत्‌में निकला है। उससे इनकी अकर्म्मण्यता और कायरताका पूरा पता लगता है। जीत हाथमें आगई थी पर ये भाग खड़े हुए। परिणाम यह हुआ कि अँगरेजोंकी विजय हुई। पाँच महीने पीछे इन्होंने अँगरेजोंके हाथमें अपने सारे अधिकार सौंप दिये। इसके बदले कम्पनीने उनको कानपुरके पास ब्रह्मवर्त (बिठूर)में रहनेका स्थान और लगभग १० लाख रुपये सालकी पेंशन दी। बाजीरावने बिठूरमें अपने तुच्छ स्वभावका और भी परिचय दिया। यदि कोई वीर और महाशय पुरुष इस प्रकार हृताधिकार हो जाता तो अपने दिन न जाने किस दुःखमें काढ़ता। उन्हीं दिनों प्रसिद्ध सम्राट् नैपोलियन सेण्ट हेलेनामें कैद थे। उनके गत वैभव और पूर्व विजयोंने उनको वहाँ एक दिन भी सुखसे न कंठने दिया। सिंह कभी पिंजरेमें सुखी नहीं हो सकता। पर बाजीराव सिंह नहीं थे। वे बिठूरमें परम सुखी थे। उनका सारा समय नाचरङ्गमें ही बीतता था। उन्होंने ग्यारह विवाह किये, ६ पूनेमें और ५ बिठूरमें। जिस पेशवा-वंशमें बालाजी विश्वनाथ, प्रथम बाजीराव, प्रथम माधवरावने जन्म लिया, जिस पेशवा-वंशका संरक्षण नाना फड़नवीस और माधवराव शिंदेसे योग्य सेवकोंने किया, उसे द्वितीय बाजीरावने मिट्टीमें मिला दिया। इन्हींके दत्तक पुत्र धोंडू पन्त (नाना साहब)ने सन् १८५७ (सं० १९१४) के विद्रोहमें अँगरेजोंके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किया था।

(ख) होल्कर-वंश।

सन् १७९५ में महारानी अहल्याबाईने स्वर्गवास किया। उनके साथ ही होल्कर-वंशका यशःसूर्य्य भी डूब गया। अहल्याबाईके पीछे

तुकोजी गद्दी पर बैठे। इनका वर्णन पहले भी कई बार आ चुका है। इनके वीर सिपाही और आज्ञाकारी सेवक होनेमें कोई सन्देह नहीं है, पर यह हम दिखला चुके हैं कि इनके विचार उतने उदार नहीं थे जैसे कि होने चाहिये। इन्होंने कुल दो वर्ष राज्य किया। इनके चार पुत्र थे—दो तो उनकी धर्म्मपत्नीसे थे और दो उपपत्नीसे। दोनों औरस पुत्रोंका नाम काशीराव और मल्हारराव था और शेष दोनोंका यशवन्तराव और बिठोजी। तुकोजीके मरने पर दोनों औरस पुत्रोंमें राज्यके लिये झगड़ा हुआ। दौलतराव शिंदेने काशीरावका पक्ष लिया और मल्हाररावको धोखेसे मरवा डाला। उधर पेशवाने बिठोबा-को बड़ी क्रूरतासे मरवा डाला। इन बातोंने यशवन्तरावको क्रुद्ध कर दिया। वे स्वभावके बड़े ही वीर, उत्साही और हठी थे। यहाँ विस्तारकी कोई आवश्यकता नहीं है; इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि उन्होंने दौलतरावको तङ्ग कर डाला। उधर पेशवा भी अछूते न बचे। यशवन्तरावने पेशवा और दौलतरावकी संयुक्त सेनाको हराकर पूना लूटा।

इसके पीछे ये अँगरेजोंसे भिड़ गये। इस लड़ाईमें भी इन्होंने प्रशंसनीय पराक्रम दिखलाया। इनके राज्यका बहुतसा अंश अँगरेजोंके हाथमें आगया, पर ये अपनी सेना लिये उत्तर भारतमें जमे रहे। हारना या हार मानना तो ये जानते ही न थे। अन्तमें महाराज रणजीतसिंहके दबावसे सन्धि हुई। यह संधि ही इनके कौशलका प्रमाण है, क्यों कि वह उसी ढङ्गकी है जैसी कि दो बराबरके राष्ट्रोंमें होती है।

यह सब कुछ हुआ पर राज्यश्री जाती रही थी। बार बारकी लूट-मारने देशको चौपट कर दिया था। मरनेके कुछ काल पहले

यशवन्तराव कुछ विक्षिप्त भी हो गये थे। सन् १८११ (सं० १८६८) में इनका देहान्त हुआ।

इनके कोई पुत्र न था। इनके जीवनकालमें ही राजकार्य्यमें इनकी उपपत्नी तुलसीबाईका अधिकार बहुत कुछ बढ़ गया था। मंत्रियोंको प्रत्येक काम उनकी सम्मतिसे करना पड़ता था। यशवन्तरावके मरने पर, इन्हीं तुलसीबाईने मल्हाररावको गद्दी पर बैठाया। ये मल्हारराव यशवन्तरावकी दूसरी उपपत्नी केसरी बाईके पुत्र थे। इनको तुलसी बाईने गोद ले लिया था।

इसके पीछे इन्दौर राज्यके इतिहासमें कई प्रकारके परिवर्तन हुए, पर वह पहलेकी सी बात न आई। आपसके झगड़ोंने उसे नष्ट भी किया और महाराष्ट्र संघसे पृथक् भी कर दिया।

(ग) शिंदे-वंश।

माधवरावकी मृत्यु होने पर उनके भतीजे दौलतराव गद्दीपर बैठे। इनकी प्रशंसा हम कई बार कर चुके हैं। गद्दीपर बैठनेके कुछ ही काल पीछे ये पेशवाईके झगड़ेमें पड़े। उसमें इन्होंने नाना फड़नवीसके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया। फिर होल्कर-गद्दीका झगड़ा खड़ा हुआ। उसमें इन्होंने मल्हाररावको मरवाकर और यशवन्तरावको कैद करके अपने सर एक व्यर्थका बखेड़ा मोल ले लिया। यशवन्तराव किसी प्रकार कैदसे छूट गये और दौलतरावके शत्रु हो गये। इसमें उभय-पक्षकी हानि हुई पर विशेष हानि दौलतरावकी ही हुई, क्योंकि उन्होंने धार राज्यको, जो उस समय दीवानकी कुटिलतासे घरेलू झगड़ोंमें फँस रहा था, दबानेका प्रयत्न किया।

इन सब बातोंने बहुत बुरा प्रभाव डाला। सारा महाराष्ट्र ही उनका शत्रु हो गया। पर ये बातें भी थोड़ी थीं। दौलतरावने इनसे भी

बढ़कर बुरे बुरे काम किये । इतना कहना आवश्यक है कि इन कामोंमें वे अपने श्वसुर सरजेराव घाटगेसे परामर्श लिया करते थे । बहुतसे ग्रन्थकारोंका कहना हैं कि उन्होंने जो जो दुर्बुद्धिके काम किये उन सबका परिचालक यही दुष्ट घाटगे था ।

मरते समय माधवराव तीन विधवाएँ छोड़ गये थे । दौलतरावने इनके लिये कोई विशेष प्रबन्ध न किया, पर कुछ दिनोंतक यों ही किसी प्रकार काम चलता गया । पीछेसे यह किम्बदन्ती उठी कि इनमेंसे सबसे छोटी बाईसे दौलतरावका कुसम्बन्ध है । बढ़ते बढ़ते झगड़ा खड़ा हुआ और दोनों बड़ी बाईयाँ दौलतरावसे अत्यन्त क्रुद्ध हुई । अन्तमें ये निश्चित हुआ कि यद बुरहानपूर भेज दी जायँ, पर इनके साथके पहरेवाले सिपाहियोंको चुपकेसे यह निर्देश किया गया कि इनको अहमदनगर ले जाकर कैद कर दो । किसी प्रकार बात फूट गई और बाईयोंके कुछ सहायकोंने उनको रास्तेमेंसे ही छुड़ा लिया ।

पेशवाके भाई अमृतरावने बाईयोंको शरण दिया । इस पर दौलतरावके सिपाहियोंने धोखेसे उनपर आक्रमण किया और उनकी छावनी लूट ली । इसका परिणाम यह हुआ कि पेशवा भी दौलतरावके विरुद्ध हो गये । उधर बाईयाँ महाराजा कोल्हापुरकी शरणमें चली गईं । दौलतरावके कई बड़े सर्दार भी रुष्ट होकर बाईयोंसे जा मिले । इन्हींमें माधवरावके वीर सेनापति लकबा दादा भी थे ।

किसी प्रकार यह उपद्रव भी शान्त हुआ । धीरे धीरे पेशवा भी सन्तुष्ट किये गये, लकबा दादा भी मना लिये गये; सरेजराव घाटगे निकाल दिया गया और बाईयोंके लिये ग्वालियरमें प्रबन्ध किया गया।

पर यह शान्ति बहुत थोड़े दिनोंतक रही। घाटगे फिर बुला लिया गया और उसके आते ही नये उपद्रव खड़े हुए। जिन सर्दारोंने बाई-योंका पक्ष लिया था उनको दण्ड दिया गया। नारायणराव बख्शी अतिशबाजीके गोलोंसे उड़ा दिये गये, मनाजी, ढल्लोजी आदि तोपसे उड़ाये गये, बल्लोबा पजनवीस, अलीत ताँतिया और सदाशिव भाऊके सिर घनोंसे तोड़े गये; यशवन्तराव हल्दिया और भारू बचलोतको विष दिया गया। ये सब माधवरावके समयके प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित सर्दार थे। इस अत्याचारका समाचार मिलते ही और बड़े सर्दारोंने दौलतरावका साथ छोड़ दिया। लकबा दादा फिर अलग हो गये।

शिंदे राज्यको इससे बड़ी चोट पहुँची। सभी प्रान्तोंमें विद्रोह खड़ा हो गया। यद्यपि सेनाकी सहायतासे उसका दमन हो जाता था पर यह दमन अस्थायी था, क्यों कि राष्ट्रके बड़े बड़े सर्दार विद्रोहियों-में थे और प्रजाकी राजामें श्रद्धा नहीं थी। सेनाके नायक भी पेरन थे जो डि बॉयनके बराबर योग्य पुरुष नहीं थे। सेनाके रूपमें भी परिवर्तन हो गया था। माधवरावके समयमें नये ढङ्गके सिपाहियों और पिण्डारी आदि लुटेरोंके अतिरिक्त बहुतसे राजभक्त मराठे भी रहते थे जिनको मराठा नाम और शिंदे-वंशकी लाज थी। अब ऐसे लोगोंका अभाव था। न श्रेष्ठ सर्दार थे, न राजभक्त सिपाही।

सन् १८०२ (सं० १८५९) में दौलतरावने अँगरेजोंसे युद्ध किया। उस अवसर पर उनके सब अँगरेज अफसरोंने जो बर्षोंसे उनका नमक खा रहे थे उनका साथ छोड़ दिया। शेषको पेरन निकाल दिया गया। दो तीन लड़ाइयोंके पीछे दौलतरावकी पूर्ण हार हुई। उनको अँगरेजोंसे सन्धि करनी पड़ी। उनके राज्यका कुछ अंश

अँगरेजोंको मिल गया। उनकी सीमा पर उन्हींके रुपयेसे एक अँगरेजी सेना रक्खी गई। भरोंच जो माधवरावको अँगरेजोंसे मिला था लौटा दिया गया। गोहद और ग्वालियरके किले भी अँगरेजोंको मिले (यह पीछेसे लौटा दिये गये)। इसके साथ ही अँगरेजोंने भी मालवा, मेवाड़ और मारवाड़में हस्तक्षेप न करनेका वचन दिया।

उस समयसे इस वंशका भी बल टूट गया। पीछेसे यह राज्य भी कुछ न कुछ सँभला, पर वह पहलेकी बात न आई। सन् १८२७ (सं० १८८४) में दौलतरावकी मृत्यु हुई। इनके भी कोई लड़का न था, न इन्होंने किसीको गोद लिया था। इस लिये इनकी विधवा, बायजाबाई, ने उसी वंशके मुकुटराव नामके एक लड़केको गोद लिया। पीछेसे इनका व्यवहार लड़केके प्रति असन्तोष-जनक हुआ ये सब अधिकार अपने हाथमें रखना चाहती थीं। इससे लोग इनके विरुद्ध हो गये और इनको भाग कर अँगरेजोंकी शरण लेनी पड़ी।

मुकुटराव जनकोजीराव शिंदेके नामसे गद्दी पर बैठे। इन्होंने सोलह वर्ष राज्य किया, पर इनके शासनकालमें देशकी दशा अत्यन्त बिगड़ गई।

इससे अधिक लिखना अनावश्यक है। जिस मन्दिरकी नीव शिवाजीने डाली थी, जिसके स्तम्भ आरम्भके पेशवाओंने खड़े किये, जिसकी अटाओंका निर्म्माण माधवराव शिंदेने किया, जिसका मसाला सहस्रों महाराष्ट्र वीरोंके रुधिरसे आर्द्र किया गया था, वह देखते देखते चूर चूर हो गया। ऊपरकी दो चार कोठरियाँ बनानी शेष थीं कि सारा घर खँडहर हो गया।

इसमें दोष किसका है ? प्रत्यक्ष रूपसे तो यशवन्तराव होल्कर, द्वितीय बाजीराव, दौलतराव शिन्दे सभी दोषी हैं। इनमें भी सबसे बड़ा दोष दौलतरावका है। उनके सामने माधवरावका आदर्श स्थित था, पर उन्होंने उसके अनुकरण करनेका प्रयत्न न किया। माधवराव पेशवाकी प्रतिष्ठाका सदैव ध्यान रखते थे; होल्करको इतना बिगड़ने न देते थे कि वे हाथसे निकल जायँ; अन्य मराठा सर्दारोंको मिलाये रखते थे; इसका परिणाम यह था कि वे महाराष्ट्रकी सारी शक्तिको विदेशियों और विधर्म्मियोंके विरुद्ध लगा सकते थे। दौलतरावकी नीति (या दुर्नीति) इसके विपरीत थी; उन्होंने पेशवाकी मर्य्यादा बिगाड़ दी, होल्करको बैरी बना लिया; अन्य मराठा सर्दारोंसे विरोध मोल ले लिया; इसका परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्रकी शक्तियाँ विच्छिन्न हो गईं। जो बल शत्रुओंके विरुद्ध लगता वह अपनोंपर ही चलाया गया और दौलतरावको अमीरखाँ आदि पिण्डारी लुटेरोंके सिवाय कोई भारतीय सहायक न मिला।

बात यह है कि जैसे अँधेरेसे प्रकाशकी महिमा समझमें आती है वैसे ही इन लोगोंकी क्षुद्रतासे तुलना करने पर हमको माधवरावका महत्त्व और भी समझमें आता है। माधवरावके साथ केवल महाराष्ट्रका स्वातंत्र्य और अभ्युत्थान ही नहीं डूबा—हिन्दुओंका हस्तामलकवत् प्राप्त-प्राय स्वातंत्र्य और अभ्युत्थान न जाने कब तकके लिये विलीन हो गया।

पर इन बातोंके लिये दौलतराव या किसी अन्य व्यक्ति-विशेषको दोष देना भी भूल है। कोई मनुष्य एक देशके भाग्यको नहीं पलट सकता। जो कुछ हुआ वह भारतीयोंके प्रारब्धका फल था। इसमें भी कोई गूढ़ रहस्य होगा। ईश्वरके सब कार्य हमारे लिये शुभ फल-

दायक ही होते हैं, चाहे हम अपनी तुच्छ बुद्धिसे उनमें कोई सद्यो-लाभ न देख सकें। सम्भव है कि इसमें भी भारतीयोंका कोई बड़ा कल्याण सोचा गया होगा, सम्भव है कि उस समय देश उस बातक योग्य न रहा हो जिसे माधवराव प्राप्त कराया चाहते थे। जो कुछ हो, हमको ईश्वर पर विश्वास रखकर उनके जीवनसे उन अमूल्य गुणोंकी शिक्षा लेनी चाहिये, जिन्होंने उन्हें इस पद पर पहुँचाया; क्योंकि ये गुण सदैव सबके लिये उपकारी हैं।

परिशिष्ट ।

१—मुसल्मान राज्योंका अभ्युत्थान और पतन ।

"The sovereign, after a longer or shorter period of uncontrolled despotism, falls, into the insanity of power or drawls into the dotage of decay. Provinces fall off from their allegiance, the despot crushes or is crushed; at least he disappears, perhaps killed in battle perhaps poisoned in a palace intrigue. He is succeeded by a courtier, a slave, or one of his own fratricidal sons; and the hideous business begins anew. In such revolutions the Empire is often weakened, sometimes quite dissolved. In its incoherent way it comes together again, some old parts lost, some new members gained; and once more the booty of conquered neighbours and the wealth wrung from helpless subjects are concentrated on the person and palace of the ruler. It is still a shifting scene of contrast, the monarch of one moment becomes the victim of another, or the puppet of an able minister. But always there remains the sinister glare of unbridled luxury and unprofitable decoration." —Keene.

" न्यूनाधिक कालतक स्वेच्छाचार करके बादशाह या तो क्षीणताजन्य विक्षिप्तता या अधिकारजनित मदान्धताके वशीभूत हो जाता है। दूरस्थ प्रदेश उसकी वशवर्तिता परित्याग कर देते हैं। वह या तो उनका नाश ही कर देता है या स्वयं नष्ट हो जाता है और अन्तमें, या तो लड़ाईमें, मारा जाकर या किसी अन्तःपौर षड्यन्त्रमें विष दिया जाकर, वह अदृश्य हो जाता है। उसका उत्तराधिकारी या तो कोई दर्बारी या गुलाम या उसका पितृहन्ता पुत्र होता है और उसी भयङ्कर कहानीकी फिर आवृत्ति होती है। ऐसे उपद्रवोंमें साम्राज्य प्रायः दुर्बल हो जाता है, कभी कभी उसका नाश भी हो जाता है। परन्तु कुछ पुराने अंशोंके निकल जाने और कुछ नये अंशोंके मिल जानेसे किसी न किसी प्रकार उसकी फिर असङ्गठित योजना हो जाती है और विजित पार्श्व-वर्ती राज्योंकी लूट, तथा निःसहाय प्रजासे करके नामसे बलात् छीने गये धन, की राशि बादशाहके शरीर और प्रासाद पर निछावर की जाती है। वह सदैव एक चञ्चल परिवर्तनशील दृश्य रहता है। एक क्षणका बादशाह दूसरे क्षण मारा जाता है या किसी योग्य मंत्रीके हाथका खिलौना बन जाता है। परन्तु निरर्थक श्रृंगार और निरंकुश विषय-भोगका पापमय प्रकाश सदैव चमकता रहता है।" (भावार्थ।)

२—बेगम सम्रू।

सम्रूका नाम वस्तुतः वाल्टर राइनहार्ड था। यह भारतमें पहले जहाजी मिस्तरी होकर आया था। कुछ दिन काम करके कलकत्तेमें अँगरेजी सेनामें भर्ती हो गया। कुछ ही दिनमें नौकरी छोड़ कर चन्द्रनगर चला गया और फ्रांसकी सेनामें भर्ती हुआ। वहाँ भी उससे न रहा गया और भाग कर शुजाउद्दौलाके पिता सफदरजङ्गकी सेनामें

भर्ती हुआ। यह नौकरी भी उसने छोड़ दी और पुर्नियाके विद्रोही फौजदार खादिम हुसैनखाँकी सेनामें जा मिला। वहाँसे चलकर वह बङ्गालके नव्वाब मीर कासिमकी सेनामें दो पल्टनोंका अफसर हुआ। इसी सम्रूने मीर कासिमकी आज्ञासे पटनेमें सब अँगरेज कैदियोंको मार डाला।

जब मीर कासिमकी परिस्थिति बिगड़ी तो सम्रू शुजाउद्दौलासे जा मिला। जब बक्सरमें शुजाकी सेना हार गई तो संधिकी एक शर्त यह भी थी कि सम्रू अँगरेजोंको सौंप दिया जाय। शुजाने इसे स्वीकार न किया। उन्होंने कह दिया कि सम्रूके साथ बहुतसे सिपाही हैं, उसको पकड़ना कठिन है। सम्रू नव्वाबकी बेगमोंके पहरे पर था। उसका कुछ रुपया भी बाकी था। एक बार जनानेको घेर कर उसने बेगमोंसे अपना सारा रुपया वसूल कर लिया और चल दिया।

यहाँसे चलकर वह भरतपुरके जाटोंके यहाँ नौकर हुआ, फिर उनकी नौकरी छोड़कर जयपुरमें नौकर हुआ। परन्तु उन दिनों जयपुर दर्बारसे अँगरेजोंसे मैत्री थी, इस लिये वह वहाँसे निकाला गया और फिर भरतपुर आया। वहाँसे चलकर वह दिल्ली आया। अँगरेजोंके लिहाजसे यहाँ भी वजीर अब्दुलअहदखाँ उसे अधिक दिनोंतक न रख सके। पर जुल्फिकारुद्दौलत नजफखाँने उसे अपने पास रख लिया। इन्हींने उसे छः लाख सालकी एक जागीर दी। इसीकी आयसे उसने एक पल्टन खड़ी की थी। इस जागीरका मुख्य स्थान सरधना था। यह अलीगढ़के पास है। यहीं सन् १७७८ (सं० १८३५)में उसकी मृत्यु हुई।

सम्रू एक विचित्र मनुष्य था। जितनी नौकरियाँ उसने कीं कम लोगोंने की होंगी। उसमें यदि कोई सद्गुण था तो एक साहस और

निर्भयता। इसके अतिरिक्त उसमें कदाचित् ही कोई और गुण रहा होगा। न तो उसे पुण्यकी परवाह थी, न पापका भय। ईमानदारी तो वह जानता ही नहीं था—जब उसके किसी स्वामीपर विपत्ति पड़ी, उसने उसका साथ छोड़ा। आपत्तिमें सहायता देना तो दूर रहा वह उल्टा दुःख देने लग जाता था। इसके मित्रोंने उसे सोंबर (जिसका अपभ्रंश सम्रू है) की जो उपाधि दी थी वह उसके स्वभावके ठीक अनुकूल है।

इसीकी पत्नी या उपपत्नी बेगम सम्रू थी। यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि इन दोनोंका सम्बन्ध कब हुआ और इनका विवाह कभी हुआ या नहीं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वह जन्मतः काश्मीरी थी और पहले पहले उसके सौन्दर्य्यने सम्रूको उसका दास बना दिया था। जो कुछ हो, उसके मरने पर वही उसकी जागीर और सेनाकी स्वामिनी हुई। उसके सुप्रबन्धसे थोड़े ही दिनोंमें जागीरकी आय दस १० लाख हो गई और सेनामें ५ देशी पल्टनें, २०० यूरोपियन और ४० तोपें हो गईं। उस उपद्रवके समयमें भी उसकी जागीरमें शान्ति ही रहती थी। मुगल-दर्बारमें भी उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और माधवराव तो उसको इतना मानते थे कि उन्होंने जागीर भी बढ़ा दी थी।

बेगम भी इन दोनोंका उपकार बराबर मानती थी। शाह आलमकी उसने कई अवसरों पर बड़ी सहायता की। गुलाम कादिरने उसको बहुत मिलाना चाहा पर इसने उसकी एक न सुनी। शिंदे-वंशके साथ भी इसने यही भाव रक्खा। माधवरावकी यह सदा सहायता करती रही और दौलतरावकी ओरसे अँगरेजोंसे लड़ी थी। इसके पीछे जब दौलत-

रावकी अँगरेजोंसे संधि हो गई तो यह भी अँगरेजोंसे मिल गई। अँगरेजी सेनापति, लार्ड लेकने इसका बड़ा सत्कार किया था। यह सब तो बेगम-के पुरुषोपम गुणोंका फल था, पर वह थी तो स्त्री ही, उसके ऊपरी पुंस्त्वके नीचे स्त्रीका हृदय था; बाहरी पुरुषवत् गाम्भीर्य्यके भीतर स्त्रीका कल्लोलमय मनो-ह्रद था। इसीने बेगमको बुरा धोखा दिया और एक बार तो उसके हाथसे राज्य भी छिनवा कर छोड़ा।

बेगमकी सेनामें जार्ज टामस नामका एक अँगरेज आफिसर था। वह साहसी और उत्साही होनेके साथ ही सुडौल और सुन्दर भी था। इस लिये बेगमकी उस पर विशेष कृपा थी। बेगमने अपनी एक परिचारिकासे उसका विवाह भी करा दिया था। परन्तु कुछ कालमें ले वेसो नामका एक दूसरा मनुष्य बेगमका कृपापात्र हो गया और टामस अप्पा खण्डेराव नामक एक मराठा सर्दारके यहाँ नौकर हो गया। धीरे धीरे ले वेसोका प्रभाव इतना बढ़ा कि अपने हितैषियोंके बहुत समझानेपर भी बेगमने उससे विवाह कर लिया।

ले वेसोका स्वभाव बड़ा घमण्डी और क्रूर था। थोड़े ही दिनोंमें उसने सबको नाराज कर दिया। यह असन्तोष इतना बढ़ा कि लोगोंने यह विचार किया कि बेगम और ले वेसो गद्दीसे उतार दिये जायँ और जफरयाबखाँको गद्दी दी जाय। यह जफरयाब एक दूसरी स्त्री-से समरूका पुत्र था और उन दिनों दिल्लीमें रहता था। वह बेगमसे इतना डरता था कि पहले तो उसने यह पद लेना स्वीकार ही न किया परन्तु पीछेसे मान गया। सब प्रबन्ध ठीक हो जाने पर लोगोंने विद्रोह किया, और बेगम और ले वेसोको भागना पड़ा; परन्तु ये सरधनासे थोड़ी ही दूर पर पकड़ लिये गये। पैदल सिपाहियोंने बेगमकी पालकी घेर ली और सवारोंने ले वेसोको घेर लिया।

इसी समय बेगमने एक विचित्र काम किया। उसने अपना छुरा निकाल कर अपने कलेजेमें भोंक लिया! रुधिर बह निकला और बेगम भी चीख उठी। पर उस घबराहटमें यह किसीने न देखा कि वस्तुतः घाव बहुत ओछा है और घबरानेकी कोई बात नहीं है। जो कुछ हो जब उसके पतिने यह सब गोलमाल सुना तो इसका कारण पूछा। तीन बार उसने यही प्रश्न किया और तीनों बार एक ही उत्तर मिला कि बेगमने आत्महत्या कर ली। इस पर उसने अपनी पिस्तौल निकाली और उसे अपने मुँहमें रखकर अपनेको मार लिया। बेगमने ऐसा ढोंग क्यों रचा, यह समझमें नहीं आता। कुछ लोगोंका यह कथन है कि सरधना छोड़ते समय बेगम और ले वेसोमें यह तय हो गया था कि आपत्ति पड़ने पर आत्म-हत्या कर लेंगे। बेगम स्वयं तो मरना चाहती थी नहीं, पर उसने मरनेका बहाना कर लिया जिससे उसके प्राणका कण्टक और उसके सब वर्तमान कष्टोंका कारण, ले वेसो, दूर हो जाय।

जो हो, वह पकड़कर सरधने लाई गई और जफरयाबखाँ मसनद पर बैठे। इस आपत्तिके समयमें बेगमको टामसकी स्मृति आई। टामसने भी उदारतासे पहलेकी सब बातोंको भुलाकर सहायता देना स्वीकार किया और उन्होंने मराठोंको भी प्रस्तुत किया। इन लोगोंकी सहायतासे बेगमको फिर अपने अधिकार मिल गये और जफरयाबखाँ कैद करके दिल्ली भेज दिया गया। उस समयसे यह सदैव मराठोंकी सेवामें तत्पर रहती थी और अँगरेजोंसे सम्बन्ध होनेपर उनके साथ भी इसका व्यवहार बड़े सौहार्दका रहा। यह अपनेको ईसाई कहती थी और अँगरेजोंकी पार्टियोंमें बराबर सम्मिलित होती थी। सन् १८३६ में इसकी मृत्यु हुई।

बेगमका स्वभाव उसके उपर्य्युक्त चरित्रसे ही खुल जाता है। वह अत्यन्त बुद्धिमती, साहसी और उत्साही थी। एक बार उससे भारी भूल हो भी गई पर उसने उसे निबाह लिया। इसके साथ ही वह कृतज्ञ और राजभक्त भी थी, पर उसकी प्रकृति बड़ी ही विषयपरा थी और क्रूरताकी तो वह मानों मूर्ति थी। बिशप फिबरने इसका एक उदाहरण दिया है। बेगम अपनी एक दासीसे रुष्ट हो गई। इसका कारण स्यात् यह था कि उसको सन्देह हो गया कि उस दासीका उसके किसी प्रेमीसे सम्बन्ध है। इस पर उसे दण्ड यह दिया गया कि वह बेगमके सामने लाई गई और उसी कमरेमें गाड़ी गई। उसके जीवित गाड़े जानेके उपरान्त बेगमने वहीं बैठकर हुक्का पिया!

३—सन्धि-पत्र।

ऊपर बहुतसी ऐसी बातें लिखी गई हैं जो सन्धिपत्रोंके देखनेसे स्पष्ट हो जायगीं। इस लिये यहाँ पर प्रधान प्रधान सन्धिपत्रोंके मुख्यांश और उनके अनुवाद दे दिये गये हैं।

(क) पुरन्धरकी सन्धि।

यह वह सन्धि है जिसके लिये कर्नल युप्टन विशेष रूपसे पूना भेजे गये थे। यह लिखी तो गई पर इसके अनुसार कार्य्यवाही कभी न हुई, क्योंकि राघोबा और बम्बई-गवर्नमेन्ट इसके विरुद्ध थे।

ARTICLE IV.

The Mahrattas do agree to give to the English Company for ever and all right and title to their entire share of the City and Pergunnah of Broach, as full and complete as ever they collected it from the **Moguls............**

ARTICLE V.

The Mahrattas do agree (by way of friendship) to give for ever to the English Company a country of three complete lakhs of Rupees, near or adjoining to Broach............

ARTICLE VI.

The Peishwa and ministers agree to pay to the Company twelve lakhs of Rupees, in part of the expenses of the English army, in two payments, viz., six lakhs within six months of the date of thisTreaty and the other six lakhs within two years of the same date.

ARTICLE VII.

It is agreed that no assistance is to be given by the English to Rugonath Row, or to any subject or servant of the Peishwa that shall cause disturbance or rebellion in the Mahratta dominions.

धारा ४।

मराठे अँगरेजोंको भरोंचके नगर और परगनेका वह सब भाग जो उनको मुगलोंसे मिला था देनेका वचन देते हैं।

धारा ५।

मित्रता के कारण मराठे भरोंचके पास तीन लाख सालकी आयकी भूमि अँगरेजोंको देना स्वीकार करते हैं।

धारा ६।

पेशवा और उनके सचिव अँगरेजी सेनाके खर्चके बदले कम्पनीको १२ लाख रुपया देना स्वीकार करते हैं। यह रुपया दो बार करके

दिया जायगा-—६ लाख तो इस सन्धिके छः महीनेके भीतर, शेष छः लाख इसके दो सालके भीतर।

धारा १२।

यह निश्चित हुआ कि अँगरेज लोग रघुनाथरावको, या पेशवाके किसी अन्य प्रजा या सेवकको जो मराठा राज्यमें विद्रोह करे, किसी प्रकारकी सहायता न देंगे।

इस संधिके देखनेसे ही प्रतीत होता है कि मराठोंका पल्ला उस समय हल्का था। अच्छा हुआ कि इस पर कार्य्यवाही न हुई।

(ख) वड़गाँवका इकरारनामा।

(जब माधवरावने अँगरेजी सेनाको हराया था तो उसके अफसरने यह इकरारनामा लिख दिया था। बम्बई-सर्कारने इसे स्वीकार नहीं किया।)

In the time of the late Sreemunt Pundit Purdhan Mhadoo Row Bullal matters went on peaceably. Since then the English obtained possession of several places belonging to the Sircar, such as the islands of Salsette and Ouran, Jambooseer and the mahals and Pergunnah of Broach, both belonging to the Sircar and the Guicawar; and the English gave their aid to Rugonath Row Dada Sahib: upon which war having commenced, Colonel John Upton came from Calcutta with full powers and made an Agreement, and according to that Agreement matters were to go on between the Company and the Mahratta sircar. But on the side of the English this Agreement was not

adhered to.................therefore that Treaty is annihilated; and in the same manner, and on the same footing as the English and the Sircar were in the time of the late Mhadoo Row, in that manner are they now to remain...........

स्वर्गीय श्रीमन्त पण्डित प्रधान माधवराव बल्लाल (पेशवा, प्रथम माधवराव) के समयमें शान्तिपूर्वक काम होता था। उसके पीछे अँगरेजोंने सालसेट, औरन, जम्बूसीर और भरोंचका महाल और परगना आदि कई स्थान जो सर्कार (पेशवा सर्कार) और गायकवाड़के थे ले लिये हैं। उन्होंने रघुनाथराव दादा साहबको भी सहायता दी। तब युद्ध आरम्भ हुआ। इस पर कर्नल जॉन युप्टन पूर्ण अधिकार लेकर कलकत्तेसे आये और एक सन्धिपत्र लिखा गया। यह निश्चित हुआ कि अब अँगरेजों और मराठा-सर्कारके बीचमें इसीके अनुसार सम्बन्ध रहेगा। परन्तु अँगरेजोंने उसका पालन नहीं किया, इस लिये वह संधि नष्ट हो गई। इस लिये अँगरेजों और सर्कारके बीचमें अब वैसा ही सम्बन्ध रहेगा जैसा कि स्वर्गीय माधवरावके समयमें था।

(ग) सल्बाईकी संधि।

(इसी सन्धिने युद्धको समाप्त किया।)

ARTICLE III.

Whereas it was stipulated in the fourth Article of the Treaty of Colonel Upton that...........this Article is accordingly continued in full force and effect.

ARTICLE IV.

The Peishwa having formerly, in the Treaty of Colonel Upton agreed, by way of friendship, to give

up to the English a country of three lakhs of Rupees near Broach, the English do now, at the request of Madhoo Row Scindia, consent to relinquish their claim to the said country in favour of the Peishwa.

ARTICLE VI.

The English engage that, having allowed Rugonath Row a period of four months from the time when this Treaty shall become complete to fix on a place of residence, they will not, after the expiration of the said period, afford him any support, protection or assistance, nor supply him with money for his expenses.........

ARTICLE XIV.

The English & the Peishwa mutually agree that neither will afford any kind of assistance to the enemies of the other.

ARTICLE XVI.

The Hon'ble East India Company, and the Peishwa Madhoo Row Pundit Purdhan, having the fullest confidence in Maharaja Soubahdar Madhoo Row Scindia Behauder, they have both requested the said Maharaja to be the mutual guarantee for the perpetual and invariable adherence of both parties to the conditions of this Treaty.

धारा ३ ।

कर्नेल युप्टनवाली (पुरन्धरकी) सन्धिकी चौथी धारा (भरोंचके विषयमें) अब भी पुष्ट मानी जाय ।

धारा ४ ।

कर्नेल युप्टनवाली सन्धिमें जो यह शर्त हुई थी कि मैत्रीके कारण पेशवा भरोंचके पास ३ लाखकी भूमि अँगरेजोंको देंगे वह माधवराव शिंदेके कहनेसे छोड़ दी जाती है ।

धारा ६ ।

अँगरेज यह वचन देते हैं कि वह इस संधिकी तिथिसे ४ मासका अवकाश रघुनाथरावको देंगे कि वे अपने लिये निवासस्थान चुन लें । उसके पीछे वे रघुनाथरावको किसी रूपमें समर्थन, आश्रय या सहायता न देंगे और न उनके व्ययके लिये द्रव्य देंगे ।

धारा १४ ।

अँगरेज और पेशवा दोनों यह स्वीकार करते हैं कि एक दूसरेके शत्रुओंको किसी प्रकारकी सहायता न देंगे ।

धारा १६ ।

कम्पनी और पेशवा माधवराव (द्वितीय) पण्डित प्रधान दोनोंको महाराजा सूबेदार माधवराव शिंदे बहादुर पर पूर्ण विश्वास है । इस लिये दोनोंने ही उक्त महाराजासे इस संधिकी धाराओंके निरन्तर और निरपवाद पालनके लिये अपने प्रति-भू होनेकी प्रार्थना की है ।

(घ) माधवरावसे संधि ।

(सल्बाईकी संधि सन् १७८२ में हुई । इसके पहले ही १७८१ में माधवरावसे पृथक् संधि हुई थी ।)

SECONDLY—That within the term of eight days from the time of the confirmation of this Treaty, they shall at one time, march off their respective armies.

FOURTHLY—That whatever country of the Maharajah's shall have been taken possession of by the Company, on this side the Jumna, Colonel Muir shall restore; and the Maharajah shall agree not to molest or disturb the country of Lokindar, Ranna Chatter Singh, Bahadoor Deleer Jung, nor the fort of Gwalior, which is at present in his possession...

द्वितीय—इस सन्धिके पुष्ट होनेके आठ दिनके भीतर उभय पक्ष अपनी सेनाओंको एक ही समय हटा लेंगे।

चतुर्थ—यमुनाके इस पार महाराजका जो कुछ प्रदेश कम्पनीके हाथमें आ गया हो, उसे कर्नल म्योर लौटा देंगे; और महाराजा यह स्वीकार करते हैं कि वह लोकेन्द्र राणा छत्रसिंह बहादुर दिलेरजङ्गके राज्यको, या ग्वालियरके किलेको जो इस समय उक्त राणाके पास है, न छेड़ेंगे। (यही गोहदके राणा थे। हम पहले लिख चुके हैं कि ग्वालियर माधवरावके हाथमें आकर ही रहा।)

(ङ) भरोंचका दान-पत्र।

(अँगरेजोंने पेशवासे तो भरोंच ले लिया पर न जाने क्या समझ कर उसे माधवरावको दे दिया।)

............We, the Governor General and Council for affairs of the British nation in India do, of our own free will and accord, and on bahalf of the Honorable Company, in testimony of the sense which we entertain of the generous conduct manifested by Maharajah Soubadar Madho Row Sindhia to the Government of Bombay, at Wargaon, and of his humane treatment and release of the English gentle-

men who had been delivered as hostages on that occasion, grant and make over unto the said Maharajah Soubadar Madho Row Sindia, all right, title, and possession in the said fort, town, and pergunnah of Baroach...

भारतमें अँगरेज जातिके समस्त कामोंके लिये नियत हम गवर्नर जनरल और कौंसिल अपनी स्वतंत्र इच्छासे और कम्पनीकी ओरसे महाराज सूबेदार माधवराव शिंदेको, उस उदारताके लिये जो उन्होंने वड़गावमें बम्बई गवर्नमण्टके प्रति दिखलाई और उस कृपामय व्यवहारके लिये जो उन्होंने उन अँगरेज सज्जनोंके साथ किया जो उस अवसर पर जमानतमें उनके पास छोड़ दिये गये थे और फिर इन सज्जनोंको छोड़ देनेके लिये, भरोंचके किले, नगर और परगनेका पूरा स्वत्व और अधिकार सौंपते हैं।

(च) सरजे अञ्जनगाँवकी संधि।

(यह संधि कम्पनी और दौलतराव शिंदेमें हुई थी।)

ARTICLE 2.

The Maharajah cedes to the Hon'ble Company and their allies, in perpetual sovereignty, all his forts territories, and rights in the Doab, or country situated between the Jumna & Ganges, and at his forts, territories, rights, and interests in the countries which are to the northward of those of the Rajaha of Jaypore and Jodhpore and of the Rana of Gohud.

ARTICLE 3.

The Maharajah likewise cedes to the Hon'ble Company and their allies, in perpetual sovereignty

the fort of Baroach and territory depending thereon and the fort of Ahmednuggur & territory depending thereon.........

ARTICLE 4.

The Maharajah likewise cedes to the Hon'ble Company & their allies, all the territories which belonged to him previous to the breaking out of the war, which are situated to the southward of the hills called the Ajuntee hills......

ARTICLE 12.

The Maharajah Dowlut Raw Sindia hereby renounces all claims upon his Majesty Shah Alum, and engages, on his part, to interfere no further in the affairs of his Majesty.

धारा २।

महाराजा सदैवके लिये कम्पनी और उसके मित्रोंको, अपने सब किले, प्रान्त और अधिकार जो गङ्गायमुनाके बीचके प्रदेशमें हैं या जो जयपुर, जोधपुर और गोहदके राज्योंके उत्तरकी ओर हैं, दे देते हैं।

धारा ३।

महाराजा इसी प्रकार कम्पनी और उसके मित्रोंको, सदैवके लिये भरोंचका किला और उसके पासकी भूमि और अहमदनगरका किला और उसके पासकी भूमि, दे देते हैं।

धारा ४।

इसी प्रकार महाराज कम्पनी और उसके मित्रोंको अजन्ती पर्वतके दक्षिणके वे सब प्रदेश दे देते हैं जो युद्धके पहले महाराजाके शासनमें थे।

धारा ५।

महाराजा दौलतराव शिंदे सम्राट् शाह आलम परसे अपने सारे स्वत्व हटा लेते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि भविष्यमें सम्राट्के कामोंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करेंगे।

(यहाँ allies 'मित्र' शब्द मुख्यतः हैदराबादके निजामके लिये आया है)।

और अधिक सन्धिपत्रोंके देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह अन्तिम सन्धि कितनी दुःखदायक है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इसने वह राज्य, वह प्रभाव, वह प्रतिष्ठा, जिसे माधवरावने जन्म-भर कठिन परिश्रम करके उपार्जित किया था, सब एक साथ ही खो दिया।

४—वर्त्तमान ग्वालियर राज्य।

वर्त्तमान ग्वालियर राज्यका क्षेत्रफल ६,२६० वर्ग कोस है। वह कई टुकड़ोंमें बँटा हुआ है, परन्तु दो प्रधान भागोंमें विभक्त है—एक तो उत्तरीय या ग्वालियर प्रान्त और दूसरा दक्षिणीय या मालवा प्रान्त। ग्वालियर प्रान्तका क्षेत्रफल ४,२५५ वर्ग कोस है। शेषमें मालवा प्रान्त और इधर उधरके टुकड़े हैं।

राज्यकी जनसंख्या ३० लाख है। इसमें ८४% हिन्दू, ६% मुसलमान, २% जैन, १% ईसाई या अन्य प्रतिष्ठित धर्म्मोंके अनुयायी और शेष ७% भील आदि जङ्गली धर्म्मोंके अनुयायी हैं।

शिक्षाका प्रचार भी अच्छा है। कालेज, स्कूल आदि सभी प्रकारकी शिक्षा दी जा रही है। राज्यसे एक समाचारपत्र भी निकलता है।

राज्यकी वार्षिक आय एक करोड़ ६२ लाख है।

सेनामें ३६ तोपें और लगभग २०,००० सिपाही हैं। ग्वालियरके सिपाही चित्राल, तिरा और वर्तमान यूरोपीय युद्धमें सम्मिलित हो

चुके हैं। इस युद्धमें ग्वालियर राज्यने ब्रिटिश गवर्नमेण्टको लगभग एक करोड़की सहायता दी है।

ग्वालियरमें एक अँगरेजी रेजिडेण्ट रहता है। ग्वालियरको कई रियासतोंसे कर मिलता है। महाराज ग्वालियरको २१ तोपोंकी सलामी है।

ग्वालियर-नरेशोंका वंशक्रम निम्नलिखित वंशावलीमें दिया हुआ है। इनमें जिन लोगोंके नाम मोटे अक्षरोंमें लिखे हुए हैं वे गोद लिये गये हैं। उनका नाम गोद लेनेवालोंके नीचे लिखा गया है। कोष्टकोंमें जो संख्याएँ दी गई हैं वे इनकी क्रमागत संख्या बतलाती हैं।

राणोजी शिंदे (१)

ज्यापा (२) — दत्ताजी — ज्योतिबा — तुकाजी — माधाजी (माधवराव शिंदे) (४)

ज्यापा (२) → जनकोजी (३)
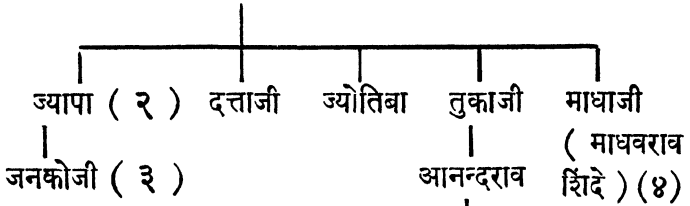
तुकाजी → आनन्दराव → (५) दौलतराव शिंदे=बायजाबाई

→ ताराबाई=**जनकोजीराव** (६)

→ **जयाजीराव** (७)

→ वर्तमान महाराजा माधवराव (द्वितीय) (८)

(=का चिन्ह यह बतलाता है कि अमुक महिला अमुक पुरुषकी पत्नी थीं।)

नये ग्रन्थ।

नीचे लिऐ हुए उच्चश्रेणीके ग्रन्थ छपनेके लिए प्रेसमें जा चुके हैं। बहुत जल्द तैयार हो जानेकी आशा है:--

१ सरल मनो-विज्ञान। हिन्दीमें मनो-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थोंका अभाव देखकर यह सरल और सुबोध ग्रन्थ लिखाया गया है। अनेक अँगरेजी ग्रन्थोंके आधारसे हिन्दी पाठकोंके लिए उपयोगी बनाकर यह लिखा गया है। प्रत्येक जिज्ञासुके पास इसकी एक प्रति रहना चाहिए। इस बीसवींसदीमें प्रत्येक देश-के माता पिता, गुरु शिक्षक, व्यापारी, धर्माधिकारी, दार्शनिक और वैज्ञानिक मनो-विज्ञानका पढ़ना अवश्यक समझते हैं। मूल्य लगभग १॥)

२ ज्ञान और कर्म। कलकत्ता हाईकोर्टके जज्ज स्वनामधन्य सर गुरुदास वन्द्योपाध्यायके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक और सामाजिक ग्रन्थका अनुवाद। यह ग्रन्थ प्राचीन और नवीन दोनों प्रकारके विद्वानोंमें आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। दार्शनिक विषयोंको बड़ी ही सरलता और मार्मिकतासे समझाया है। प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिकोंके ग्रन्थोंका दीर्घकाल तक अध्ययन और मनन करके यह अपूर्व ग्रन्थ लिखा गया है। बंगालके सभी श्रेणीके विद्वानोंने इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। मूल्य लगभग २॥)

३ सुखदास। सुप्रसिद्ध उपन्यासलेखिका जार्ज इलियटके ' साइलस माइ-नर ' का हिन्दी रूपान्तर। हिन्दीके सिद्धहस्त उपन्यासलेखक श्रीयुक्त प्रेमच-न्दजीने इसे लिखा है, इस लिए इसकी प्रशंसा करनेकी अवश्यकता नहीं है। बड़ी सजधजसे छपाया जा रहा है। मूल्य लगभग ।॥)

नीचे लिखे हुए ग्रन्थ इसी महीनेमें छपकर तैयार हो जायँगे:—

१ आनन्दकी पगडंडियाँ। सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक जेम्स एलनके ' Byways of Blessedness ' नामक ग्रन्थका अनुवाद। अनुवाद कर्त्ता—खाचरियावासके जमींदार श्रीमान् ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०। मू० १)

२ भारतके प्राचीन राजवंश । जोधपुर म्यूजियमके अध्यक्ष साहित्याचार्य प० विश्वेश्वरनाथ रेउ। इसमें क्षत्रप, परमार, हैहय, पाल, सेन और चौहानवंश उनके शाखावंशोंका प्रारंभसे लेकर अभी तकका शृंखलाबद्ध और प्रामाणिक इतिहास दिया गया है । अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्राचीन संस्कृत और फारसी अरबीके ग्रन्थोंके आधारसे लिखा गया है । हिन्दीमें यह बिलकुल नई चीज है । प्रथम भाग तैयार है । मूल्य ३) रु० । दूसरे भागमें राष्ट्रकूट, गुप्त, आन्ध्र आदि वंशोंके इतिहास रहेंगे । उसके छपानेका भी प्रबन्ध हो रहा है ।

३ जीवन-निर्वाह । लेखक, श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील । एक स्वतंत्र और ज्ञानवर्धक ग्रन्थ । सभ्यताके प्रारंभका इतिहास, तरह तरहके धर्मोंकी उत्पत्ति और उनके क्रमविकाशका इतिहास, धर्मोंका सत्यानाशी स्वरूप, उनसे देश और मनुष्यजातिका अकल्याण, धर्मोंकी असलियत और नैतिक शिक्षाका स्वरूप, आदि अनेक बातोंको इसमें बहुत अच्छी तरहसे समझाया है । तरह तरहके बहमों और कुसंस्कारोंसे घिरी हुई जनताको प्रबुद्ध करनेके लिए इस ग्रन्थका घर घरमें प्रचार होना चाहिए । मूल्य १)

नोट । इनके सिवाय और भी कई ग्रन्थोंके छपानेका प्रबन्ध किया जा रहा है । हमारा बड़ा सूचीपत्र मँगाइए ।